

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180027

UNIVERSAL
LIBRARY

हू टी चू ड़ि याँ ●

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

राजकमल प्रकाशन
बम्बई : दिल्ली

शी
ला
श
र्मा

प्रकाशक :

राजकमल पब्लिकेशन्स लि०

दिल्ली ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक

न्यू इण्डिया प्रेस

कनाट सरकस

नई दिल्ली

प्राक्कथन

इस छोटे से संग्रह के साथ श्रीमती शर्मा कहानी-लेखिका के रूप में हिन्दी संसार के सामने पहली बार उपस्थित हो रही हैं। कहानी-लेखकों की हिन्दी में कमी नहीं है, पर मेरा विश्वास है कि जिस प्रतिभा का श्रीमती शर्मा की इन पहली रचनाओं में आभास मिलता है उसका पूर्ण विकास हिन्दी के गल्प-भाण्डार को उच्चकोटि की कहानियों से भरेगा और उसके द्वारा श्रीमती शर्मा अपना एक विशिष्ट स्थान भी बना सकेंगी।

श्रीमती शर्मा की कहानियों की भाषा ही सरल, सुन्दर और सजीव नहीं है अपितु उनके कथानक भी जीवन के साधारण अनुभव और प्रतिदिन की घटनाओं पर आश्रित हैं। सास का बहू के प्रति अत्याचार, औरतों की पारस्परिक ईर्ष्या, ग्रामीणों की साधारण समस्याएँ, यहाँ तक कि एक बूढ़ी कुतिया की ज़िन्दगी और मौत—इन छोटी-छोटी बातों से ही श्रीमती शर्मा अपने कथानक खोज लाती हैं। निम्न एवं मध्यम वर्ग की अशिक्षित और अर्धशिक्षित स्त्रियों का बहुत ही सफल चित्रण आपकी कहानियों में मिलता है। समाज के विधान में निहित अन्याय की ओर आपने हल्का-सा इशारा करके उसके प्रति ध्यान आकर्षित किया है, पर इस इशारे में उस अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की भावना भी है। आपकी कोई-कोई कहानी कविता-सी कल्पना का सहारा लेकर लिखी गई है और कहीं-कहीं व्यंग इतना हल्का और छिपा हुआ है कि कहानी के अन्तिम वाक्य पर ही सारी कहानी का बोझ आ गया है—पर वह वाक्य इस भार को उठाने की शक्ति रखता है, इस विषय में पाठक को कोई संशय नहीं रहता।

श्रीमती शर्मा से भविष्य में हिन्दी को बड़ी आशा रहेगी।

नई दिल्ली }
२१-८-१९६० }

—बालकृष्ण राव।

—: सूची :—

	कहानी	पृष्ठ
१.	शिकार	१
२.	सिगरेट	४
३.	रीना	८
४.	जूतों की जोड़ी	१३
५.	टूटी चूड़ियाँ	१७
६.	मिठाई की दुआन्नी	२१
७.	काका	३०
८.	गुड़िया	३८
९.	ननकू लठैत	४२
१०.	ताई जी	४८
११.	कलुई	५४
१२.	आवारा	५७
१३.	केक वाला	६५
१४.	हरीरा	६८
१५.	कोनी	७४
१६.	राजा मुन्ना	८०
१७.	न्याय	८६
१८.	कुर्त्ता-टोपी	९०
१९.	सोने की करधनी	९३
२०.	परिस्थिति	१००
२१.	कमीने कहीं के !	१०७

शिकार

जंगल के पास एक छोटा सा खुला घास का मैदान था। पास में कुछ झाड़ियाँ थीं। एक हिरनों का छोटा-सा झुंड बिखरा-बिखरा सा रात वहीं बिताता था। एक दिन मृग ने देखा, मृगी खोई खोई सी घूम रही हैं; मानो कोई आश्रय खोज रही हो। अँधेरा होने लगा तो वह भी झुरमुट के पास ही बैठ गई।

मृग ने अपने बड़े २ काले सींग उठाकर नेत्रों की भाषा में पूछा, “अकेली हो?”

उसी मौन भाषा में उत्तर मिला “हूँ”।

“तो यहीं रहो, हम तुम संग-संग चरने चला करेंगे”—मृग के नेत्रों ने मृगी की ओर देखते हुए कहा।

मृगी ने अपनी सजल सीप सी आँखें नीची करके सम्मति दे दी।

×

×

×

रात की शीत का ठिठुरा जंगल बड़ी लालसा से सूर्य की प्रथम किरणों की ओर निहार रहा था। किरणें भी मानो

मिलने के हर्ष में पत्ती-पत्ती पर नाच रही थीं। मृग और मृगी भुरमुट के पास बैठे थे। कंचन सी उनकी देह प्रातः रश्मियों में और भी चमक रही थी। मृग ने मृगी की पीठ पर अपनी गर्दन रखते हुए कहा, “आज तो तुम बड़ी सुन्दर लग रही हो।”

मृगी ने मानो सुनी अनसुनी कर दी।

फिर दुहराया मृग ने, “तुम सी सुन्दरी इस वन में शायद ही कोई हो!”

नील कमल सी आँखें घुमाकर मृगी बोली, “तुम भूठे हो।”

“कल तो बड़ा आनन्द रहा—अभी तक पेट फटा जा रहा है।” अपने सींग मृगी की पीठ पर मलते हुए मृग बोला।

“क्या हो गया था उन द्विपदधारियों को—सो गये होंगे शायद”—मृगी ने धीरे से कहा।

“हूँ, सो गये होंगे या चले गये होंगे अपनी प्रेयसी के पास”, मृग ने मृगी को छेड़ते हुए कहा।

मृगी खूट कर उठ बैठी।

×

×

×

भुटपुटा हो चला था। मृग और मृगी चरने चले।

पास ही चने का खेत था और आज दोनों ही दिन भर के भूखे थे। अवसर पाते ही उस पर पिल पड़े।

यह कैसा शब्द ! मृगी चौंक पड़ी और भाग खड़ी हुई। कुछ दूर जाकर लगा, मानो मृग साथ न हो। उसने मुड़कर देखा, मृग का निर्जीव शरीर उस मखमल से खेत में पड़ा था। और

यह क्या, ये लोग उसे उठाकर कहाँ लिये जा रहे हैं ?

खोई-खोई सी मृगी बैलगाड़ी के पीछे चल दी । उसकी बड़ी बड़ी सजल आँखें कुछ खोज रही थीं—कुछ पूछ रही थीं ।

सिगरेट



सात बहनों में एक भाई था, और आज उसकी शादी थी । वर्षों बाद आज वह दिन आया था कि सातों बहनें इकट्ठी हों । कुन्ती तो मानो काम किये अघाती ही न थी । न कोई काम ही था जो पूरा हो जाता, जब तक कुन्ती स्वयम् उसे न देखती । माँ चार पाँच साल पहले से बीमार थीं । इसीलिये कुन्ती को पहले से ही लिख दिया था कि अपने भाई की शादी संभालना हो तो पहले से आ जाना । बहनें तो और भी थीं परन्तु कुन्ती सबसे बड़ी जो थी, इसीलिये इन कामों में अभ्यस्त भी थी । सब बहनों की शादियाँ उसी के सामने हुई थीं । तीन बच्चों के बाद मुन्ना ही था, जो पाँच साल का उसकी गोदी में खेल रहा था । सुनते हैं, कोई और एक वर्ष भी न लाँघ पाया ।

मुन्ना से प्यार करते हुए कुन्ती बोली, “राजा बेटा ! अम्माँ बुलावा देने चली जाय ? घर खेलेगा ?

मुन्ना ने हामी भर ली ।

“और सुन मुन्ना ! ये नई नई शेरवानी—ये नया नया चूड़ी-

दार पाजामा, गन्दा न करियो, हाँ ? आज तो मेरे मुन्ना की मामी आयेगी ।”

मुन्ना ने सिर हिला दिया, जैसे उसको खेल में कपड़ों का यान ही तो रहेगा ।

“जगू ! ओ जगू ! कहाँ बैठा रहता है ? सुन, अभी मैं आऊँगी । खबरदार जो मुन्ना को छोड़ा । संग-संग खेलना । बाहर न जाने देना, मोटर गाड़ी आती रहती है । और देख, देर हो ना मुझको तो इसमें से कुछ खाने को दे दीजो । समझा ?”

“तुम जाओ, बहूजी ! मैं देख लूँगा ” जगू अपने उत्तर-दायित्व की गंभीरता से बोला । कुन्ती बोली, “जा तो रही हूँ, पर कहीं अपनी चिलम पर वह बुकनी न छिड़क लेना ।”

चह्दर ओढ़कर कुन्ती चल दी ।

×

×

×

“मुझे तो आये देर हो गई महेश बेटा ! मुन्ना नहीं दीखा, न जगू ही”, कुन्ती ने अपनी छोटी बहन दम्मो के बच्चे से पूछा ।

महेश और मुन्ना बहुधा संग संग खेलते थे—दोनों में कुछ महीनों की छोट बढ़ाई थी ।

“मौछी मारोगी तो नहीं ?” महेश ने कुछ सकपका कर उत्तर दिया ।

कुन्ती ने सोचा, लगता है पहले की तरह आज भी यह कटोरदान की मिठाई खा गया है और मुन्ना भूखा रह गया है ।

बोली—“मारूँगी क्यों ? मौछी कभी मारती है ? हाँ, कहाँ है मुन्ना ? जल्दी से बुला ला, और मिठाई दूँगी।”

पर महेश का चेहरा उतरता जा रहा था । मानो कोई भयानक चित्र उसकी आँखों के सामने आगया हो । बड़े प्रयास से कुछ शब्द उसने कहे ।

“मौछी, ऊपर छिगट पीने गये थे । मुन्ना और हम, मौछी !”

यह महेश की पुरानी आदत थी और इस पर कई बार पिट भी चुका था ।

“तुझे पता नहीं सिगरेट कहाँ से मिल जाती है तू मुन्ना को भी सिखायेगा, और कुछ नहीं । अब मत पोना । जा, मुन्ना को बुला ला ।” कुन्ती ने झुँझला कर कहा ।

“दादा की जेब में थी, मौछी, सिगट, और सलाई भी । मुन्ना ने सलाई जलाई, मौछी”—महेश रुक कर कहने लगा—“तो उंगली जल गई, तो फिर जलाई छलाई तो कोट मौछी आगी होने लगा—गलम गलम लाल लाल—मैं पंखा लाया मौछी—आगी बुझाने को, तो और लाल लाल ।”

“अरे ! जल्दी बता महेश ! अब कहाँ है मुन्ना ? ओ जगू ! जगू ! अरे साँप सूँघ गया क्या ?” पागलों की तरह घबड़ाते हुए कुन्ती बोली ।

“मौछी दोल के मुन्ना तब मैं बैथ गया—नीनी आगई मौछी तब” महेश ने अपनी समझ में बड़ी जल्दी उत्तर दिया ।

“मौछी, ऊपल है, ऊपल है मुन्ना तब में ।”

कुन्ती ऊपर भागी । उसकी गति थी कि सर्प की—जगू !
ओ जगुआ ! पर जगू तो कृम्भकंरण से होड़ लेकर सोया था ।

क्षण भर में कुन्ती टब में पड़े मुन्ना के निर्जीव शरीर के
सामने माथा पकड़े बैठी थी ।

नीचे बैन्ड बज रहा था; शायद बहू की पालकी द्वार पर लग
रही थी ।

रीना

लैसो में:—

रमन के लिये यह दुविधा असह्य हो उठी थी, और आज वह अपने भाग्य-निर्णय पर उतारू था। जो आत्मसम्मान कई बार उसे रीना के घर जाने से रोक चुका था, आज वोही आत्मसम्मान उसके पौरुष को ललकार रहा था। इस ओर हो या उस ओर उत्तर तो आज वो लेकर ही रहेगा। दोषी सा रमण आन्ट एनी के सामने खड़ा था।

“तुम कितनी बार सुनना चाहते हो कि इस घर में मत आया करो—इसी वक्त—इसी वक्त यहाँ से चले जाओ और खबरदार जो फिर कभी इस घर में पैर रखा तो !”

रमन खड़ा था अचल, पत्थर की मूर्ति सा।

“सुना नहीं तुमने ? क्या तुम चाहते हो मैं किसी को बुलाऊँ जो तुम्हें बाहर धकेल दे ? मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम भारतीय युवक इसके बड़े आदी हो।”

रमन का मौन टूटा—आन्ट एनी ने दृढ़ शब्दों में सुना।

“चला तो मैं स्वयं ही जाऊँगा, पर आपके कहने से नहीं।

रीना मुझ से एक बार कह दे कि मैं यहाँ न आया करूँ, तो मैं आपको वचन देता हूँ, आप मेरी शकल इस घर में फिर कभी न देखेंगी।”

रीना क्षण भर में वहाँ खड़ी थी। रमन की उपस्थिति और आण्ट एनी के क्रोधपूर्ण नेत्रों ने एक लहमे में उसको सब स्पष्ट कर दिया था। आण्ट एनी ने गम्भीरता से उसकी ओर मुड़ते हुए कहा—

“रीना ! तुम एक को पसन्द कर लो। इस युवक को या मुझको। मेरे घर में रहकर तुम इससे नहीं मिल सकती हो।”

रीना का अंतःकरण काँप उठा। उसने पूछा—“क्या यह तुम्हारा अन्तिम निर्णय है, आण्ट एनी ?”

“हाँ रीना, अन्तिम।”

रीना कुछ झिझकी, पर आण्ट एनी ने सुना—“तो तुम्हें कुछ क्षण में स्वयं ही उत्तर मिल जायगा।” और रीना अन्दर चली गई।

जब वो बाहर निकल कर आई तब उसके हाथ में छोटा-सा सूटकेस था।

×

×

×

रमन अब भारत आ गया था और रीना की गोद में दो बच्चे थे; और रीना के ही आग्रह पर उसे अपने माँ बाप के पास छोड़कर रमन मिलिटरी में चला गया।

रमन को एक ऐसी बहू मिली थी जो सम्भवतः दिया लेकर खोजने पर भी भारत में नहीं मिलती। अब तो अम्माँ ने भी हार मान ली थी और इसका प्रमाण यही था कि वह रीना के हाथ का खाने लगी थीं। हाँ, ठाकुरजी की पूजा वह अभी तक रीना से न कराती थीं।

खाने पीने का सब सुख था, पर रीना को कुछ न भाता था। रमन के पत्र आते भी थे तो फीके से। युद्ध तो छिड़ा ही था, रेनू—उसके बड़ी ननद के पति—रोज आँगन में बैठकर सारी खबरें सुनाते—और सुनाते भी तो अपने स्वभावानुकूल पूरी चरपराहट के साथ। इंगलैण्ड पर आक्रमण हो रहे थे, हिटलर जीत रहा था, और शायद हिटलर के सब इरादे रेनू के पति ही को मालूम थे।

“अरे देख लेना, यह इन अंगरेजों से हल चलवायगा—रिक्शा खिंचवायगा। उनके कैदियों को कोड़े मारता है, रोज़ सवेरे कोड़े। और अभी क्या है, ज़रा जम जाने दो पैर विलायत में—सालों की खाल खिंचवायगा। हिटलर है जनाब हिटलर……” !

रीना सुनती।....सुनती और रोती। उसके लिये संध्या का यही मनोरंजन था। और सम्भवतः अगर रमन के पत्रों में वही पहली वाली आतुरता रहती तो यह भी उसकी अथाह सहन शक्ति में समा जाता।

रमाशंकर को क्या पता न था कि रीना को दामाद की ये

बातें नहीं भाती हैं—पर रेनू का पति ही एक दामाद था जिससे सम्बन्ध अच्छे थे औरों से जो कुछ हुआ था उसका इतना भय था कि उससे कुछ कहने का उनका साहस ही न होता था। रीना को रेनू के पति से आंतरिक घृणा हो गयी।

रीना का जीवन भारी हो उठा था। उसके प्रयत्नों से रमन ऐसे स्थान पर भेज दिया गया जहाँ वह परिवार के साथ साथ रह सकता था। रीना उसी के पास चली गई।

पर अभी तो वह अपने छोटे से परिवार में एक सुख की साँस न ले पाई थी कि रेनू के पति का पत्र आया। वह भी देहरादून देखना चाहता था और उसके साथ कुछ और लोग भी आवेंगे। रीना को वह काल-सा लगने लगा था। उसके बहुत मना करने पर भी रमन उसको मना लिखने पर सहमत न होता था। रीना को सम्भवतः पता न था कि रमन अब बदल चुका है। अन्त में एक दिन झुँझला कर उसने कह ही तो दिया—“मैं तुम्हारे लिये अपने घर वालों को कैसे छोड़ दूँ, रीना।”

रीना पर वज्रपात हुआ—ग्लैसगो में उस दिन का चित्र सजीव होकर उसके सामने आ खड़ा हुआ जब उसने रमन के लिये अपनी सखियाँ, अपने घर वाले, अपने देश तक का मूल्य न आँका था और जिन्हें भूल जाने का वह अभी तक प्रयास ही कर रही थी।

उसके नेत्र सजल हो उठे—बड़े प्रयास से कुछ शब्द उसके मुँह से निकले “ठीक कहते हो रमन तुम, अपने घर वालों को

किसी को नहीं छोड़ना चाहिये ।” रीना अन्दर चली गई ।

×

×

×

ढेक पर खड़ी रीना टकटकी बाँधे समुद्र की ओर देख रही थी ; एक समुद्र उसके हृदय में उमड़ रहा था, और एक उस की आँखों में । पता नहीं वह कभी भुला सकेगी या नहीं अपनं वे दोनों लाल जो वह भारत को दिये जा रही थी ।

जूतों की जोड़ी



“कहाँ चली गई ?” आते ही मथुरा ने आवाज दी। तारा रसोई में थी—बोली, “चली कहाँ जाती, चौके में हूँ। अब आगये हो तो पहले रोटी खा लो।”

मथुरा ने बदन पर दो लोटे पानी छोड़ा, और चौके में आ बैठा। तारा ने थाली परोस कर सामने रख दी। “गुड़िया, कहाँ चली गई ?” मथुरा ने पहला ग्रास तोड़ते ही पूछा। बच्चे मथुरा को बहुत प्रिय थे। काका और गुड़िया दोनों को ही साथ बिठा कर वह खाना खाता था। नाम तो गुड़िया का, चन्द्रा था, पर प्यार से मथुरा उसे गुड़िया ही कहता था। और वह थी भी गुड़िया ही। रंग-बिरङ्गे कपड़े पहन कर चन्द्रा बाहर जाती तो गुड़िया सी ही लगती। आकर मथुरा उसके घुँघराले बालों से खेलता हुआ कहा करता—

“तू ने भी कहाँ जन्म लिया गुड़ो—किसी राजा के जाती तो तेरी कदर होती।”

काका उससे तीन साल छोटा था। अभी साल ही भर का था।

तारा ने फुलका तबे पर डालते हुए कहा, “यहीं कहीं होगी। मेरा कहना भी सुनती है ! तुमने ऐसा बिगाड़ रखा है।”

“गुड्डो ! ओ गुड्डो !” मथुरा ने आवाज लगाई और गुड़िया सीधी भागती हुई मथुरा की गोद में आ बैठी।

“हाय री गुड्डो ! इतनी सयानी हो गई, कुछ तो सीख— हाथ पैर तो धो लिये होते। सीधी चौके में घुस आती है।” तारा भुँभलाती हुई बोली।

“जा री गुड़िया। मोटरें देख आया हूँ तेरे लिये। पैर धो आ ना।” मथुरा बोला।

“मोटर दादा”—बड़ी २ आँखें घुमाते हुए गुड़िया बोली।
“एक मोटर हम भी दादा !”

“कैसी मोटर ?” तारा ने चौंक कर पूछा।

“सोचता हूँ दो लारियाँ ले लूँ। ललितपुर से बाँदा दौड़ा करेंगी। अच्छी आमदनी हो जायगी। जमींदारी मुझ से नहीं सँभलती। दो डरेवर मिल जायें अच्छे, तो काम बन जाय।”

“तुम से कभी कुछ सँभला है जो जमींदारी सँभल जाय ? ये रुपया कहाँ से फट पड़ा जो मोटरें खरीद लोगे ?” तारा ने थाली में दो फुलके रखते हुए कहा।

“तभी तो मैं तुमसे कुछ कहता नहीं हूँ। जो बात कही, तुम पहले ही कन्नी काटने लग जाती हो। साभे में लूँगा मोटरें।”

X

X

X

मोटरें चलने लगीं और अच्छी आमदनी होने लगी।

घर बैठे एक बँधी हुई आमदनी होने लगी थी। पर सबसे अधिक खुशी मथुरा को तब होती जब मोटर देखकर काका गोदी में उछलने लगता और कहता “पों पों—दादा पों पों।” और गुड़िया दौड़ कर मोटर के पास जाती और डरेवर के घुटनों से चिपट कर कहती “हम भी मोटर पर जाँयगे विश्वम्भर”; और विश्वम्भर कितना भी थका क्यों न आये, जब तक गुड़िया को मोटर पर घुमा न लाता उसे चैन न पड़ता था। मथुरा को बच्चों की खुशी में अपने रुपयों का मूल्य मिल जाता।

×

×

×

“गुड़ो ! ओ री गुड़ो ! पता नहीं कहाँ भाग जाती है।” तारा ने स्त्रीभ कर आवाज लगाई। “अरे खाना तो खा जा।” काका उसकी गोद में ठूँस ठूँस कर खा रहा था।

“दादा कहाँ गये हैं, अम्माँ ?” गुड़िया ने पीछे से आकर पूछा।

गुड़िया को भी दादा के बिना खाना न भाता था।

“बाँदा गये हैं। तेरे लिये नये २ जूतों की जोड़ी लायेंगे। चल, जल्दी से खाले। पता नहीं, मोटर की बात ठहरी, देर सबेर हो जाय। गुड़िया बैठ गई, पर कान उसके कहीं और थे।

“अम्माँ मोटर” एक साथ गुड़िया बोल उठी।

“तेरे कान बजे हैं। बैठ, चुपचाप खाना खा।” तारा ने स्त्रीभ कर कहा। पर मोटर की घड़घड़ाहट और साथ में हार्न की आवाज अब तारा को भी साफ सुनाई पड़ रही थी।

गुड़िया उठकर भागी। तारा के हाथ का घास हाथ में ही रह गया। “बड़ी जंगली लड़की है” मन ही मन वह बुदबुदाने लगी। घास छोटा कर उसने काका को खिला दिया।

फिर काका को गोदी से उतार कर पटरे पर बिठाती हुई बोली—

“नीचे बैठ जा काका”—गुड़ो कहीं गिर गई दीखती है। देखो तो चिल्लाना, पता नहीं इस लड़की को कब अकल आयगी। ज़रा देख आऊँ क्या हो गया है।”

तारा जल्दी २ सीढ़ियाँ उतरने लगी। पर विशम्भर व मथुरा ऊपर ही आ रहे थे।

“तूने तो मुझे मार ही डाला, विशम्भर!” मथुरा ने एक आह भर कर कहा।

“मैं क्या जानूँ, मथुरा भय्या! मैंने देखा था कोई पीछे नहीं है सो गाड़ी पीछे बैक कर दी। पता नहीं, बिटिया कब पीछे भाग आई।”

तारा के काटे तो खून ही नहीं। गुड़िया का निर्जीव शरीर लिये विशम्भर ऊपर चढ़ रहा था।

मथुरा ने जूते की जोड़ी लाकर ताल पर रख दी।



टूटी चूड़ियाँ

इन्दू के लिये अब संसार सूना था ।

जिस के अवलम्ब पर वह सुहाग का स्वर्ण-कलश संभाले बैठी थी वह अवलम्ब कच्चे धागे की तरह हवा के एक ही झोंके से टूट गया । आज राधेमोहन का दसवाँ था । सारे घर में हाहाकार मचा हुआ था । अभी दो ही साल तो शादी को हुए थे । गोद में एक बच्चा भी होता तो उसका मुँह देख कर इन्दू सबर कर लेती । आज दस दिन से नील अम्बुज की तरह उसकी आँखें बरस रही थीं ।

घर के पास ही एक तालाब था । इन्दू की चूड़ियाँ वहीं तोड़ दी गईं ।

×

×

×

स्वभाव ही इन्दू का ऐसा था कि जो उससे मिलता था उसका हो जाता था । घर के बच्चे तो थे ही, पास पड़ोस के रोते हुए बच्चे भी उसकी गोद में आकर सो जाते थे । पर इन सब में सब से अधिक प्यारा इन्दू को था—चन्दू, जिठानी

सरला का चार साल का लड़का ।

×

×

×

दूर खड़ा चन्दू आज सुबह से सारा नाट्य देख रहा था । चाची के पास जाने का तो उसे आज साहस ही नहीं होता था । जाता भी कैसे, सुबह से मौका देख रहा था कि इन्दू अकेली हो तो पूछे “क्यों रोती हो चाची ?” पर आज तो मानो सारे घर ने चाची को घेरे रखने का संकल्प ही कर लिया है । सहमे-सहमे माँ से एक बार पूछा था ‘अम्मा चाची क्यों रोती है ? तुम ने मारा है ?’ झुंझला कर अम्मा ने उत्तर दिया था—‘दूर खेल चन्दू’ !

अब दोपहर ढले भीड़ कम हुई थी । इन्दू ने एक सांस ली—रोने को तो मिलेगा अब । एक एक का आश्वासन, एक एक की झूठी सहानुभूति उसके हृदय में तीर की तरह चुभ रही थी । बैठी ही थी कि धीरे से दबे पाँव चन्दू किवाड़ खोल कर अन्दर आया । इन्दू को अकेला देख कर उस की गोद में बैठ गया । अपने नन्हें नन्हें हाथों से उस के आँसू पोंछता हुआ बोला “क्यों रोती हो चाची ?”

इन्दू ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया ।

“अम्मा ने पिट्टी की है चाची ?” चन्दू ने फिर पूछा ।

“जा बेटा, बाहर खेल” इन्दू ने धीरे से चन्दू को गोदी से उठाते हुऐ कहा ।

इतने ही में सरला आ गयी । बोली—“क्यों जान खाये जा

रहा है चाची की चन्दू ? जा बाहर जा, आज चाची का जी नहीं अच्छा है ।”

चन्दू पीछे खड़ा हो गया । सहमा-सहमा डरा-डरा सा ।

इन्दू को अपनी ओर खींचती हुई सरला बोली—“कब तक रोओगी इन्दू ? अब सबर करो, जो होना था सो हो गया । उठो, चलो, मुंह धो लो । जो चूड़ियाँ टूट गयीं वो जुड़ थोड़े ही जायँगी । अब क्या रोना है उनका ? तू मेरी बहन है इन्दू—यह घर पहले तेरा है, फिर मेरा.....”

सान्त्वना के दो सच्चे शब्द सुन कर इन्दू का रुका हुआ बाँध फिर खुल गया । सरला की गोदी में सिर रख कर वह सुबक सुबक कर रोने लगी ।

पता नहीं, चन्दू वहाँ से कब चला गया ।

×

×

×

सुनसान अन्धेरी रात—इन्दू बैठी सोच रही थी । जीवन की सारी रातें यों ही अकेले बैठ कर काटनी हैं ।

रोते रोते अब तो आँखों के आँसू भी सूख गये । जीवन भर रोना है अभी तो ।

दिन भर के थके घर के सभी प्राणी सो रहे थे ।

धीरे से पीछे से चन्दू ने कहा “चाची ! चाची !”

“तू सोया नहीं अभी तक चन्दू ?” इन्दू ने पूछा “बड़ी रात हो गई !”

“चाची ! तू रोना मत चाची ! अच्छा—मैं तालाब के पास

से सब चूड़ियाँ बीन लाया हूँ। कल मैं और कुम्मी सब जोड़ देंगे—अच्छा चाची ! अम्मा कहती हैं, चूड़ियाँ जुड़ती नहीं। कुम्मी ने चाची ! चूड़ियाँ जोड़ जोड़ कर माला बनायी है। अच्छा चाची, रोना मत।”

इन्दू ने चन्दू को छाती से लगा लिया। दो बड़ी-बड़ी बूँदें उसकी आँखों से गिर पड़ीं।

“मिठाई की दुअन्नी”

हंसू को स्कूल का आखिरी घण्टा काटना दूभर हो जाता । एक एक पल उसे बरसों सा लगता था । सामने खुली तो किताब रहती परन्तु उसके काले २ अक्षरों की जगह उसे बैजू की दूकान की बर्फी और जलेबियाँ दिखाई पड़तीं । कई बार जेब में हाथ डालता—ऊपर से टटोलता—दुअन्नी का स्पर्श होते ही उस की बाँछें खिल जातीं ।

अन्यमनस्क होने के कारण उसे कक्षा में कई बार बेंच पर खड़ा होना पड़ता और जब आखिरी घण्टा होता तो एक आध चपत भी पड़ ही जाती । पर वह अपनी आदत से लाचार था । घण्टा बजता और सबसे पहले हंसू स्कूल से भागता दिखाई पड़ता । जब तक लड़के उस तक पहुँचते, हंसू के दोने की मिठाई अगर सब नहीं तो आधी तो अवश्य ठिकाने लगी रहती थी ।

स्कूल के और लड़के तो बैजू के ग्राहक थे ही पर हंसू सा कोई न था । और अब तो यह हालत हो गई थी कि बैजू पहले से ही हंसू का दोना बना रखता था । उसे पता था कि हंसू को

जलेबियाँ बहुत पसन्द हैं; ताजी जलेबियाँ न होतीं तो वह दोने में बर्फी रख दिया करता ।

जब से हंसू ने स्कूल जाना शुरू किया था, अम्मा ने उसकी दुअन्नी बाँध दी थी । रोज बिना नागा हंसू अम्मा से दुअन्नी वसूल कर लेता । हंसू कर्मा भूल भी जाता तो सीता न भूलती । आज हंसू को स्कूल जाते करीब दो वर्ष हो गये थे । सीता से दुअन्नी लेना व बैजू से मिठाई खरीदना उसके लिये नित्य का कार्यक्रम हो गया था । छुट्टी के दिन हंसू को अपनी दुअन्नी खोने का बड़ा रंज होता ।

पर अब पासा पलट चुका था । एक दिन स्कूल से लौटा तो पता चला कि अम्मा कहीं चली गई है । हंसू ने सोचा, शाम तक आ जायेगी । पर न आई । रात में प्रतीक्षा करते-करते हंसू सो गया । मौसी आगई थी । बहुत कहा उसने हंसू कुछ खा ले, पर हंसू ज़िद पर था कि अम्मा के साथ ही खाऊँगा । पता नहीं, कब उसकी आँख लग गई । सुबह आँख खुली तो उसे पूरा विश्वास था कि अम्मा चौके में दूध ठंडा कर रही होगी ।

पर वहां अम्मा न थी, मौसी थी । दिन बीतते गये पर अम्मा न आई । एक दिन मौसी भी चली गई । हंसू काका से कहता अम्मा को बुला लो, तो काका इधर उधर को चल देते । अम्मा चली गई तो हंसू को मिठाई की दुअन्नी मौसी से मिलने लगी । मौसी चली गई तो काका से दुअन्नी मिलती रही ।

एक दिन हंसू ने सुना अम्मा आ रही है । मारे खुशी के

स्कूल नहीं गया। बड़ी बड़ी बातें सोच रखी थीं उसने। जब अम्मा आयेगी तब पूछूँगा कहाँ चली गई थीं। इतने दिन क्यों लगा दिये ? हंसू सुबह से बरामदे में बैठा अम्मा की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे ख्याल था अम्मा आते ही उसे गले लगा लेगी। पहले गेंद फिर बल्ला—गुब्बारे और पटाके निकाल-निकाल कर उसे देगी और कहेगी काका ने कनैठी तो नहीं की थी ? एक ताँगा द्वार पर लगा तो हंसा की निद्रा टूटी। पहले काका उतरे और पीछे-पीछे अम्माँ—एक पीली सी चहर ओढ़े। हंसा दौड़ा अम्मा की तरफ ! “अम्मा ! अम्मा ! कहाँ चली गई थी ?”

पर काका ने बीच ही में रोक लिया। हंसा ने एक धक्का दिया और अम्मा के पैरों से लिपट गया।

“मेरे लिये गुब्बारा लाई हो अम्मा ? और पटाके अम्मा ?” अम्मा का हाथ खींचते हुए हंसा बोला, “ओ अम्मा ! तुम्हारे हाथ कैसे काले हो गये ? अम्मा तुम तो बड़ी गोरी थी !”

काका ने हंसा को एक झिड़की दी, “जा हंसा उधर जाकर खेल।”

हंसा सहम गया। छिपा छिपा खिड़की की ओट से देखता रहा। उसे अब पूरा विश्वास हो गया था कि यह अम्मा वो अम्मा न थी जिसे हंसा अब तक खोज रहा था।

दूसरे दिन से हंसा फिर स्कूल जाने लगा। दुअन्नी मिठाई की उसको मिलती तो रही पर उस तरह नहीं जैसे पहले मिला

करती थी। सुबह से हंसा दुअन्नी का तकाजा करना शुरू करता। कभी काका से कहता, कभी अम्मा से। एक आध भिड़की भी सुननी पड़ती, पर मिठाई का लालच बुरी चीज़ है। अन्त में काका ही उसे दुअन्नी निकाल कर देते।

मिठाई तो वह अब भी खाता था, पर अब उसका चाव आधा हो गया था। सहमा सा दुकान पर जाता; जैसे चोरी कर रहा हो। बैजू ने एक आध बार पूछा “क्यों लाला, क्या बात है, कैसे रहते हो खोये-खोये से? जी नहीं अच्छा है क्या?” पर हंसा स्वयं नहीं जानता था कि उसे क्या हो गया है। और क्या बैजू से छिपा था कि अब घर में नया राज था?

×

×

×

सुबह हुई और हंसा स्कूल की तैयारी करने लगा।

“कैसे खड़ा है रे?” पार्वती ने डाँटकर पूछा।

हंसा तो उसकी मुद्रा देखकर सहम गया था। उत्तर क्या देता!

“खा पी लिया, लेकिन फिर सिर पर सवार है। बोलता क्यों नहीं रे? किसी ने मुँह सी दिया है क्या?” पार्वती सिल पर चटनी पीस रही थी—बड़बड़ाने लगी।

“मेरी किस्मत तो मुझसे दो हाथ आगे चले है। यहाँ आई तो जान खाने को ये मौजूद हैं। अरे क्या चाहिए रे?”

हंसा बिना उत्तर दिये लौट पड़ा। आत्मसम्मान जग उठा था शायद। इधर उधर देखा कहीं काका मिल जाँय, पर

काका आज सुबह से ही कहीं गये हुए थे। हंसा स्कूल की ओर चल पड़ा। आज पहली बार उसको दुअन्नो नहीं मिली थी।

स्कूल तो वह चला गया, पर हर घण्टे में उसकी शामत आई। आज उसे पता नहीं क्या हुआ था। जो उत्तर उसकी जीभ पर रक्खे रहते थे, आज याद करने पर भी याद न आते थे। हंसा खीझ उठा। उसे लगने लगा आज सब हाथ धोकर उसके पीछे पड़े हैं। आखिरी घण्टा भी आया, पर आज हंसा चाहता था कि कुछ हो जाय पर छुट्टी न हो। रोज तो यह घण्टा उसे पहाड़ सा भारी हो जाता था। आज उसे लगा कुछ क्षण में ही खतम हो गया। अनायास ही उसका हाथ जेब में चला गया। शायद नई अम्मा ने जेब में दुअन्नो डाल दी हो, जैसे उसे जल्दी में देखकर सीता उसकी जेब में डाल दिया करती थी। पर हाथ सूना ही लौट आया—हंसा का रहा सहा साहस भी खो गया। वह फूट-फूट कर डैस्क पर सिर रख कर रोने लगा।

छुट्टी हो गई, पर हंसा वैसे ही डैस्क पर सिर रक्खे बैठा था। आज क्या जल्दी है स्कूल से भागने की।

रामू उसका मित्र था।

“क्या हो गया है रे हंसू तुझे आज ?” रामू ने पास आते हुए पूछा। “घर नहीं चलना है ? रोज तो तू सबसे आगे भागता था। दुअन्नो गिर गई दीखती है ?” रामू ने उसका हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा।

हंसा घर की ओर चल दिया। चलता-चलता सोच रहा

था कि बैजू की दुकान पड़ेगी तो दौड़ कर पार कर जाऊँगा । आँख उठा कर उस तरफ देखूँगा भी नहीं । बैजू को क्या जरूरत पड़ी है जो बुलाये ! और अगर बुलाया भी तो क्या, सुनी अनसुनी कर दूँगा । पर जैसे जैसे बैजू की दूकान पास आने लगी उसका हृदय बड़ी तीव्र गति से धड़कने लगा । सोचा यहीं से दौड़ता हुआ सीधा निकल जाऊँ ; पर दौड़ना तो कौन कहे, चलना तक दूभर हो गया । एक-एक पैर न-मन भर का लगने लगा । प्रयास तो बहुत किया कि आँखें ज़मीन पर लगी रहें, पर आँखें न मानीं । रोकते-रोकते भी कनखियों ने देख लिया, ताज़ी जलेबियाँ उतर रही थीं ।

“किधर निकले जा रहे हो लाला ? ये दोना भरा रक्खा है ।” बैजू ने हंसा को आवाज़ लगाई । हंसा ने फिर सोचा । एक दौड़ में मामला तय था, पर आज जाने उसे हो ही क्या गया था ! पैरों ने चलने से इन्कार कर दिया था । आँखें जलेबी की कढ़ाई पर लगी थीं और हंसा मूर्ति सा खड़ा था ।

बैजू को समझते देर न लगी । उसको अभी तक यही आश्चर्य था कि हंसा को दुअन्ननी मिलती कैसे चली जा रही है । जो महरी हंसा के यहाँ चौका-बरतन करने जाती वही तो बैजू की दूकान पर पानी भरने आती थी ।

“पैसे न हुए तो क्या हुआ, लाला ! जलेबी न खाओगे ?” उसने दोने में और जलेबियाँ रखते हुए कहा । पहले तो बैजू रोज़ हंसा को दुअन्ननी में चार पैसे का माल देता था पर आज

उसका स्नेह उमड़ आया था ।

पर हंसा वहाँ खड़ा था वज्र-सा ।

“ओ री मुलिया ! ये ले, दोना लाला के भोले में डाल दे ।”

बैजू ने मुलिया को आवाज़ लगाई ।

हंसा ने चाहा बैठ कर जलेबियाँ खा ले, पर उसका गला भर आया । दोना भोले में डालकर वह आगे बढ़ आया । अपने आँसू किसी को दिखाना वह कायरता समझता था ।

हंसा का मन आज उदास था । किताबों का भोला कील पर टाँग कर वह रामू के घर की ओर चल दिया ।

रामू के घर के सामने एक म्यूनिसिपैल्टी का मैदान खाली पड़ा था । मुहल्ले भर के बच्चों की कबड्डी की पलटन शाम को वहीं जमा होती थी । जब तक हंसा नहीं आ जाता खेल शुरू न होता था । दोनों दल हंसा को अपनी तरफ लेने का प्रयत्न करते । बात यह थी कि हंसा को दौड़ में एक विशेष स्फूर्ति थी । एक बार में बिना तीन चार को छुए वह नहीं लौटता था । जिधर हंसा रहता जीत उधर की ही होती थी । आज जो वह दौड़ा तो सबसे पहले रामू ही ने उसकी कौली भर ली । यों तो वो रामू जैसे चार को खींच लाता पर आज कौली में आते ही उसका दम टूट गया । वह एक ओर बैठ गया । रामू आज अपनी जीत पर बड़ा प्रसन्न था । रह रह के उसे शाबाशी मिल रही थी । खेल जोरों से चलता रहा । किसी को पता न चला हंसा कब वहाँ से चल दिया । आज उसका मन कहीं नहीं लग रहा था ।

सीधा घर गया और औंधे मुँह बैठक में लेट रहा। काका आ गये थे। अन्दर से काका की आवाज साफ़ साफ़ सुनाई दे रही थी, बीच-बीच में अम्मा की।

लेटा ही था कि उसे काका के आने की आहट हुई। उसने करवट ली। कहने ही जा रहा था कि “काका, आज ज्वर तो नहीं आ गया मुझ को? ज़रा बदन देखना” कि काका के हाथ ने एक ही झटके में उसे लेटे से खड़ा कर दिया और डपट कर पूछा—“क्यों रे हंसू, तूने बकसिया में से पैसे निकाले हैं?”

हंसा के मुँह से ‘नहीं’ निकला ही था कि बस काका का एक चाँटा उसके गाल पर लगा। वह गिरते-गिरते बचा। “भूठ बोलता है” और चाँटों और लातों की वर्षा उस पर शुरू हो गई। बीच बीच में काका शब्दों का पुट देते जाते। “अम्मा कहती हैं बकसिया के पैसे कम हो गये हैं। चुराये नहीं तो क्या उड़ गये?”

जितना-जितना अपनी सिसकियों के बीच हंसा इन्कार करता उतना ही उतना उनका क्रोध बढ़ता जाता। “क्यों बे, चुराये नहीं थे तो भोले में ये जलेबियाँ कहाँ से आई? जब खा खा कर अघा गया तो इतनी बचा लाया।”

मारते मारते काका का दम फूलने लगा था, पर क्रोध अभी शान्त न हुआ था। कोने में छड़ी रखी थी। काका क्रोध के स्वरूप बने खड़े थे। हाथ में छड़ी देखकर हंसा सिहर उठा।

“सच बता, नहीं तो अभी हड्डी पसली ठीक कर दूँगा।”

काका ने गरज कर कहा ।

“बैजू ने दी थी, काका !”

अभी वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि पार्वती गरज कर बोली, “क्यों नहीं, बैजू तेरा बड़ा सगा है ना, ऐसा बाँटना शुरू कर दे तो चल चुकी दूकान उसकी ! भूठ तो देखो कैसा सफेद बोलता है ! मैं भी तो कहूँ कि भोले में कतार की कतार चींटियाँ कैसे बढ़ी जा रही हैं । देखूँ तो भोला भरा पड़ा है जलेबियों से ।”

काका की छड़ियाँ बरसना शुरू हो गई । दो ही छड़ियों में हंसा ज़मीन पर लोटने लगा । “अब कभी भूठ बोला तो ज़िन्दा न छोड़ूँगा । चोरी करता है, ऊपर से भूठ बोलता है ।”

पार्वती के विचार से मार काफ़ी लग चुकी थी । काका का हाथ पकड़ कर बोली, “क्यों इस पर गुस्सा करके अपना खून जला रहे हो ? यह तो देखो अभी क्या क्या करेगा ।”

छड़ी पार्वती ने हाथ से खींच कर कोने में रख दी । काका आँगन की ओर चल दिये ।

हंसा पृथ्वी पर पड़ा सिसकता रहा । दीवार पर चींटियों की कतार तो वैसी ही बढ़ती जा रही थी । हाँ, हंसा के आँसुओं की धार अब सूख चली थी ।

आज उसे अम्मा की याद आ रही थी ।

काका



रेल के कर्मचारियों के रहने के लिये कार्टर बने थे—एक एक कमरा, उसके आगे छोटे छोटे बरामदे, और उसके आगे थोड़ा सा घिरा हुआ आंगन ।

रद्धो ने धूप लेने को जो सवेरे सवेरे आँगन के किवाड़ खोले तो देखा, काका पहले से ही ईंटों पर बैठा मूँगफली खा रहा है। पहले तो रद्धो किवाड़ों के बीच से झाँकती ही रही। माँ की सीख उसे याद थी “कि खबरदार जो मैंने तुम को काका के साथ देखा तो।” पर फिर उससे न रहा गया ।

काका ने जो मुड़ कर देखा तो रद्धो पीछे खड़ी थी। पता नहीं, मूँगफलियाँ उसे वहाँ तक खींच लाई थीं या काका ।

“क्यों री रधिया मूँगफली लेगी ?” काका ने भोला दिखाते हुए कहा ।

“रधिया नहीं राधिका” रद्धो ने तनक कर कहा । “राधिका” मुँह टेढ़ा करके काका ने नकल उतारी । “बड़ी आयी कहीं की राधिका, मैं तो कहूँगा रधिया ! रधिया ! रधिया !”

रद्धो ने एक साथ रोना शुरू कर दिया और ज़मीन पर लोट पोट हो गई। काका अपना झोला लेकर भागा। रोना सुन कर सीता बाहर भागी भागी आई। “अरे क्या हो गया री?” रद्धो ने एक लोट और धूल में लगाई। एक चीख निकाल कर हाथ पैर पटकने शुरू कर दिये। कुछ बोलती तो रोना बन्द करना पड़ता। अपनी उँगली से ईंट की ओर इशारा कर दिया जिस पर कि काका बैठा था और फिर पैर पटक पटक कर रोना शुरू कर दिया।

“अरे मारी सन गई धूल में, अभी तो नहला कर भेजी थी। बोलती क्यों नहीं, किसने मारी थी ईंट खींच के?”

चीखों के बीच केवल काका ही काका सुनाई दिया।

“उसी काका ने मारी होगी। तभी तो भागता देख रहा था। नास जाय उसका।” और बड़बड़ाती बड़बड़ाती वह आँगन में घुस गई। अपने आँगन में से चिल्ला चिल्ला कर कहने लगी, “देख लो काका की अम्मा अपने काका की हरकत। ऐसी ईंट मारी कि गुम्मड पड़ गया। रोज़ रोज़ की नहीं सुनी जाती। एक रोज़ की हो तो कोई बरदाश्त कर ले। सर में लगी, कहीं आँख वाँख में लग जाती तो लौंडिया की जात—क्या होता? कहीं सर फट जाता तो लेने के देने पड़ जाते? ऐसी भी ढील किस काम की। सब के लड़के होते हैं।”

इन आरोपों के उधर से उत्तर आने लगे।

“काका को क्या कहो हो। वो तो सबेरे से ही बाहर चला

गया है । अपनी लौंडिया को क्यों नहीं समझातीं । सब के लौंडियाँ होती हैं, पर ऐसी नहीं जो दूसरों के मुँह लगें । अपने बच्चे तो काबू में आते नहीं और दूसरों के नाम धरे हैं ।”

बात बढ़ती ही गई ।

×

×

×

रद्धो ने नई लाल रेशम की फराक पहनी जो कल बाबूजी मेले से लाये थे । तेल करा कर चोटी कराई, उसमें लाल फुँदना लगाया । सीता बोली, जा पिटारी ले आ तो काजल भी लगा दूँ ।

“अब काजल बिन्दा तो लग गया । अब स्लेट पर बैठ कर गिनती लिख डाल, मैं खाना बनाने जा रही हूँ । बाहर न भाग जइयो ।” रसोई में जाती हुई सीता बोली ।

पर रद्धो क्यों मानने को थी । मौका देखते ही बाहर सरक गई ।

काका गोलियाँ खेल रहा था । रद्धो को देखते ही एक बार मुँह चिढ़ा दिया और फिर गोलियाँ खेलने लगा ।

काका का ध्यान आकर्षित करने के लिये अपनी फराक दिखाती हुई रद्धो बोली, “हम मेले से लाये हैं ।”

“क्या ?” काका ने पूछा ।

“यह लाल लाल फराक ।”

काका को बड़ी जलन हुई । मेले तो वह भी गया था । दादा से टोपी को कहते कहते हार गया पर दादा हूँ हूँ ही करते रहे ।

“हूँ, जैसे बड़ी अच्छी है !” उसने मुँह बना कर कहा ।

“हाँ, है अच्छी” रद्धो तनक कर बोली ।

“हम भी लाये हैं एक चीज़ !” काका अपनी भेंप मिटाता हुआ बोला ।

“क्या ?” रद्धो को उत्सुकता हुई ।

“यह गुलेल ।” जेब से गुलेल निकाल कर काका ने दिखाई ।

“ऐसा निशाना लगता है कि बस ।”

“एक चीज़ और है हमारे पास” रद्धो बीच ही में काटती हुई बोली “एक इतनी बड़ी सी स्लेट और खड़िया ।”

अन्दर से आवाज़ आई “फिर तू भाग गयी बाहर । अरी, ओ रद्धो.....।”

रद्धो जान लेकर अन्दर भागी । रद्धो तो भाग गई, पर काका को चैन न पड़ा । उसे मन में बड़ी ईर्ष्या हो रही थी । उसके बाबू जी स्लेट भी ले आये । दादा ने एक पेन्सिल तक न खरीदी ! गुलेल तो वह अम्मा के दिये पैसों से ले आया था, नहीं तो दादा तो खाली हाथों ही लौटा लाते । इधर उधर टहलता रहा, पर मन न लगा । धीरे से झाँक कर देखा, रद्धो अपनी लाल फराक पहने खटिया पर बैठे स्लेट पर कुछ लिख रही है । अन्दर से सुनाई दे रहा था “अच्छा अच्छा लिखियो तो चप्पल मँगाऊँगी तेरे लिये ।”

काका की जलती हुई आग पर घी पड़ा । एक लकड़ी से उसने किवाड़ और खोल दिये । एक गोल सा कंकड़ बिन कर लाया और बाहर ही से जो निशाना लगाया तो एक खन की आवाज़

हुई और स्लेट दो हो गई। सारे घर में तहलका मच गया। रद्धो की चीख और सीता की गालियों की बौछार सुन कर बाबूजी भी आ पहुँचे। आस पास के कार्टरों से आवाज़ आने लगी। “अरे क्या हो गया रद्धो की अम्मा।”

रद्धो की माँ अपने रुद्र रूप में थी।

घर में से कनस्तर और डलिया निकाल निकाल कर उसने बाहर रखना शुरू कर दिया।

“मैं इस कार्टर में एक दिन भी नहीं रुकने की। किराये का मकान अच्छा इससे तो। मेरा क्या है, मैं तो रद्धो को लेकर पीहर चली जाऊँगी। मेरी लौंडिया ही तो आंखों में चुभे है।”

बाहर भीड़ सी लग गई। लोग सीता को समझाने लगे।

काका की अम्मा अलग घर सिर पर उठाये थी।

“हाय ! हाय ! अब तो हृद हो गई। घर में जो कुछ फूटे सो मेरे लड़के ने फोड़ दिया। अपने लड़का नहीं है तो जलन मेरे लड़के पर निकले हैं। कब का बाहर गया है। कभी घर में तो रहता ही नहीं। कहीं घर में रहता तो जाने क्या होता।”

काका खटिया के नीचे घुसा सोच रहा था कि आज सचमुच बड़ी गलती हुई। अब की रद्धो से दोस्ती कर लेगा।

×

×

×

काका स्कूल से आया तो देखा, रद्धो बाहर गुल्ली खेल रही है। काका को देखते ही वह अन्दर भागी और किवाड़ों में से भाँकती रही। काका ने इधर उधर देखा कोई है तो नहीं। फिर

बोला, “ये देख रद्धो अंगरेजी मिठाई” और अपनी लेविन ड्रॉप की भरी मुट्ठी खोल कर दिखा दी। रद्धो ने सोचा यह भी काका की कोई चाल होगी। वह दूसरी ओर देखने लगी।

“तेरे लिये लाया हूँ।” काका ने पास आकर कहा।

पहले तो रद्धो को आश्चर्य हुआ पर जैसे ही काका ने एक उठा कर अपने मुँह में रक्खी कि रद्धो से न रहा गया। उसने किवाड़ों के बीच से अपना हाथ बाहर निकाल दिया। काका उसके हाथ में सारी लेविन ड्रॉप लौट कर अपने कार्टर में भाग गया।

अब अक्सर, जब पैसे जुड़ जाते, काका रद्धो के लिये लेविन ड्रॉप लाता और रद्धो वहीं आँगन के बीच भाँक भाँक कर उसकी प्रतीक्षा करती।

पर बच्चों का मेल और बड़ों का वैर संग ही संग बढ़ता गया।

×

×

×

“सुन री रद्धो” पास बुला कर धीरे से सीता ने पूछा।
“कल तू काका को लड्डू दे आई थी चुरा के?”

रद्धो सहम गई। उसने सोचा फिर चोरी पकड़ी गई। अब चांटों की बौछार शुरू हो जायगी। उसने सिर हिला कर नहीं कर दी।

“चल री भूठ न बोल—मैं क्या जानूँ न हूँ। कल काका की अम्मा काका से कह रही थी—यों न खा लिया कर किसी

के घर की, को कुछ दे देगा। अच्छा सुन, आज काका आयेगा न, तो ये लड्डू से दे दीजो। तुम्हें मैं दूसरा दूँगी ये न खा लीजो, खरदर

रद्धो ने लड्डू ले लिया और दौड़ कर किवाड़ों के बीच चौखट पर बैठ रही। बैठे बैठे साँभ सी होने लगी पर काका न आया। उसे क्या पता था कि आज काका के स्कूल में मैच है।

लड्डू हाथ में रक्खा रहे और पेट में न जाय, रद्धो के लिये तपस्या हो गई। उसने एक चुटकी भर कर मुँह में रख ली। भूठा हो गया तो क्या? एक दिन काका ने भी भूठी रेवड़ी उसको दी थी। लड्डू बड़ा स्वादिष्ट था। रद्धो से न रहा गया धीरे धीरे करके उसने आधा कर डाला। खत्म हो गया तो क्या? आज अम्मा बड़ी खुश है, दूसरा माँग लूँगी काका के लिये। बचा-खुचा भी उसने खा डाला।

थोड़ी देर तो बैठी रही। फिर जी कुछ भारी सा होने लगा तो जाकर सो रही।

काका मैच से लौट कर आया तो आज बहुत सी चीजें लाया था। दूर से ही देखा कि किवाड़ों के पास कोई नहीं है तो चाल धीमी कर दी कि शायद अब निकल कर आवे। पर रद्धो न आयी। इधर उधर चक्कर लगाने लगा। जोर जोर से एक आध अपने साथियों को आवाज भी लगाई कि रद्धो सुन

ले तो निकल आये । पर वह न निकली । काका के हाथ की लेविन ड्राप हाथ ही में पसीज गई, पर रद्धो नाही आई ।

—आज उसके घर में कुहराम-सा मचा था ।

—

गुड़िया

(एक व्यंग)

नीरा और डौली अपनी गुड़ियाँ ले लेकर संग खेल बैठीं ।

‘ रात को गुड़ियाँ नहीं खेली जातीं । सो जाओ दोनों । ’
अम्मा की आवाज सुनाई दी ।

अपनी गुड़ियों को संग ले लेकर दोनों ही लेट गईं । दिन भर की थकी थीं । जल्दी ही नींद आ गई ।

×

×

×

जब सुनसान हो गया तो दोनों गुड़ियाँ उठ कर बैठ गईं ।

“क्या नाम है तुम्हारा ?” डौली की गुड़िया ने पूछा ।

“गुड्डो और तेरा ?”

“कभी चुन्नी तो कभी मुन्नी, कभी चुन-चुन तो कभी मुन-मुन । कौन सा बताऊँ ; मेरा नाम तो बिटिया रोज बदलती है ।”

“बड़े लाड़ हैं ? अकेली हो ?” नीरा की गुड़िया ने ईर्ष्या से पूछा ।

“हूँ ! अब तो अकेली ही हूँ । एक और थी पहले, सो बीमार

रहा करती थी। जगह जगह से सीमन खुल गई थी। सो उसे अब छोड़ रखा है।”

“सो यों कहो दुहेजियों की हो। या दूसरी हो। तुम्हारा भी वही हाल न हो?” ताना देती हुई गुड्डो बोली।

“मेरा क्या होगा?” चटक कर मुन्नी बोली।

“बिटिया क्या बच्चा ही बनी रहेंगी? सयानी हुई नहीं कि बुढ़ापा आया। अब सयानी हुई जाती हैं; साल दो साल में सो चली जायेंगी पराये घर।”

“अरे यूँ न कहो।” गुड्डो ने बीच ही में काटा।

“जो होती आई है सो ही तो कह रही हूँ, कोई सच थोड़े ही छिप जायगा न कहने से।”

गुड्डो ने सोचा बात लौट देना ही अच्छा है। नहीं तो यों ही जवाब सुनने पड़ेंगे।

“चुन्नी तो तुम्हें जाने थी। तुम ने सुना उस का क्या हुआ?”

“क्या?” डौली की गुड़िया ने उत्सुकता से पूछा।

“काकी खाना बना रही थीं। बिटिया पास खड़ी थी उसे ले कर; सो झट अंगीठी में कूद पड़ी। जल गई बिचारी।” कह कर गुड्डो ने आँसू पोंछ लिये।

“भला क्यों?” आँखें फाड़ कर मुन्नी ने पूछा।

“दुःखी रहे थी, सो तो मैं जानूँ।” गुड्डो ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

“तो जल काहे को गई ?”

“सो क्या करती । भाग के कहीं खो जाती तो भी तो सारा जीवन धूल ही में बिताना पड़ता ।”

“हूँ” गम्भीरता से मुन्नी बोली ।

और फिर दोनों चुप हो गई । मानो घटना की गम्भीरता पर मनन कर रही हों ।

“तुम्हारे सिर पर कुछ चोट लग गई थी क्या ?” गुड्डो ने पूछा ।

“हाँ, लग तो गई थी ।”

“कैसे लग गई ?”

“कुछ न पूछो ? पूरे सुख-दुःख की कथा है । न कहते बने, न ना कहते ।”

“जी हल्का हो जाता है किसी से हाल कह दो तो ।” मुन्नी ने सान्त्वना देते हुए कहा ।

“हूँ तो मैं भी अकेली बहन ! पर हमारा जीवन भी कोई जीवन है ।” एक ठंडा आह भर कर गुड्डो चुप हो गई ।

“बात या तो शुरू न करे और करे तो पूरी कर दे ।” मुन्नी ने फिर गुड्डो को उकसाया ।

गुड्डो फिर धीरे से बोली—“क्या कहूँ ! जो जिस पर बीते हैं उसे भुगतना ही पड़े है । मेरी बिटिया रानी यों तो बड़ी अच्छी है । मेरा बड़ा ख्याल रखे है । पर एक आदत बड़ी खराब है । मुझे डिब्बे में सुला कर चली जाँय हैं और फिर अड़ोस-पड़ोस की

गुड़ियों से खेले हैं। पहले तो मैं सोचू थीं काम से गई हैं। और वो सोचे थीं मुझे पता ही नहीं चले हैं। पर बहन ! सब पता चल जाये है। बहुत दिन सबर किया पर एक दिन जो अपनी आँखों देखा तो फिर रहा नहीं गया। मैंने सोचा, आज तो कूद के जान ही दे दूँगी। सो एक साथ जो कूदी तो ढिब्बे के साथ नीचे आ गिरी। सिर फूट गया। ये फूटा सिर उसी की निशानी है। मैंने सोचा, जब भाग ही फूटा है तो सिर फूटने की क्या ?” एक उसास भर कर गुड़ो चुप हो गई।

“बस, यही तो खल जाये है। हम निर्जीव से हैं, तभी तो सहना पड़े है यह सब। थोड़ा सा भी जीवन होता हम में, तो माँह को हम किसी की सहते।”

X

X

X

कुछ आहट हो चली थी, दोनों ने आह भरी और चुपचाप लेट रहीं।

ननकू लठैत

अब की बैठ से ननकू नई । लाठी लाया था भला गंवई में यह किस को पता न था ! जिस दिन से लाठी आई थी रोज़ नई दुलहिन की तरह उसका शृंगार होता । थी भी तो पूरी साढ़े छः हाथ की । कभी ननकू मेंहदी पीस कर उसका रंग निखारता । कभी उस पर तेल मल कर उस को पौढ़ा करता । और तो सब था, ही हाल में रामरूप सुनार से कामदार चांदी की मूठ भी लगवा लाया था । घंटों बैठा ननकू उसको रगड़-रगड़ कर चमकाया करता । क्या मज्जाल थी कोई उसकी लाठी को हाथ तो लगा दे ।

ननकू उठता तो मुँह-अँधेरे था पर दंड बैठक, फिर मुगदल घुमाना और उसके बाद पूरे घंटे भर की मालिश । कभी-कभी नहाते-नहाते दोपहरी चढ़ जाती थी और जब अपना नहाना धोना खत्म हो जाता तो लाठी का शुरू हो जाता ।

कभी कभी तो सुखिया खोफ़ उठती । सारे दिन तो एक से नहीं जाते । कभी कोई दिन जल्दी-सवेरे का भी होता है । पर ननकू की दैनिक क्रिया में अन्तर न आता था ।

अब तो आस पास के गांवों में भी “ननकू लठैत” मशहूर हो चला था और अपने गाँव में तो सभी ननकू का अदब करते और डरते थे। और भला डरते भी क्यों न, अभी उस दिन पहर रात गये ननकू घर लौट रहा था कि उसे लगा जैसे घुरहू अहीर के घर कोई परछाहीं सी दीवार पर से अन्दर सरक गई हो। ननकू का माथा ठनका, सोचने लगा, घुरहू होता तो ढंग से टटरी खोल के जाता। यह परछाहीं-सी क्या निकल गई। घुरहू कहे भी था कि ‘बरखा’ बीते यह मुँडेर ऊँची उठाऊँगा। कई बेर रात को उसे “सक” पड़ चुका है।

ननकू दम साध के मुँडेर से लग गया। थोड़ी देर में अन्दर जानवरों की खड़बड़ाहट की आवाज़ आई। ननकू एक छलांग में मुँडेर कूद गया। अन्दर जाके देखे क्या है कि जगगो ने एक गाय तो खोल रक्खी है और दूसरी खोलने को झुका है। झुके ही झुके के कंधे पर ऐसा हाथ धरा ननकू ने कि बस वहीं से हड्डी उतर गई। जन्म भर को जगगो लाचार हो गया। यह टेव तो गई सो गई, जिन्दगी भर को हाथ भी चला गया और अब सुखिया ही जब ननकू की चार रोटी पोती तो चार जगगो की भी डाल देती।

ऐसे ही पिछले साल एक लकड़बग्घे का गांव भर में आतङ्क-सा छा गया था। ननकू सुसराल गया था। पीछे कितनी हो बकरियाँ उठ गईं। कितनी भेड़ों का पता न चला। लौट के आया तो देखा कि गाँव की यह हालत है कि दिन डूबे एक बच्चा

भी बाहर नहीं दीखता। बस फिर क्या था ? बहुतेरा समझाया सुखिया ने, अकेले मत जाओ, पर ननकू कब मानने वाला था। अकेले ही दो लाठियों में एक रात लकड़बग्घे को ठंडा करके ही तो माना।

×

×

×

“यह मुन्ना क्यों रो रहा है ?” ननकू ने घर में घुसते ही पूछा।

“प्यासा है।” सुखिया बोली।

“प्यासा है ? अरे तो एक गिलास पानी क्यों न दे देती ? फिर संवार लीजो यह अपनी कथरी गुदरी। अच्छा चल मैं ही दिये दूँ हूँ। ऐसे बच्चे को ना रुलाया कर।” ननकू घड़ा भुकाता हुआ बोला।

ननकू ने एक घड़ा देखा फिर दूसरा; सब खाली।

“क्यों री बड़ी आलकिसन हो गई है अब तू। घर में एक बूँद पानी नहीं है। लड़का प्यासा पड़ा रो रहा है और तेरे सिर पर जूँ तक नहीं रेंगती।”

“मैंने बीस बेर कह दिया, तुम कुएँ पर नहाने जाते हो, लौटती बेर दो कलसे पानी के भर लाया करो। मैं पानी भरने न जाऊंगी” सुखिया बोली।

“दो कलसे पानी में क्या होगा जी। डंगर क्या प्यासे तड़पेंगे। क्यूँ न जायगी तू पानी भरने ? अब तेरे ये नखरे हो गये।” ननकू को गुस्सा आने लगा।

“डंगरों को पोखरे पे पिला तो आई थी पानी।” सुखिया खीज कर बोली।

“नाक तले के कुएं से तो पानी लाया नहीं जाता मील भर के पोखरे से पानी पिला के लाती हैं डंगरों को। ये उल्टी सीधी चालें क्यों शुरू करी हैं चलनी ? सीधे-सीधे क्यों नहीं बोलती, तेरे जी में क्या है ?” ननकू ताव पर चढ़ता हुआ बोला।

सुखिया ननकू का गुस्सा जानती थी। सोचा, पता नहीं, क्या बात का बतंगड बन जाय। चुपचाप घड़ा उठा कर चल दी।

अभी सुखिया ने कुएँ की जगत पर पैर रक्खा ही था कि पीछे से आवाज आयी—“आज तो सचमुच बड़ी देर तरसाया।” सुखिया ने मुड़ कर देखा, पीछे छोटे ठाकुर साहेब खड़े थे। मलमल की दुपल्ली टोपी संवारते हुए बोले—“मैंने भी कहा देखूँ कब तक नहीं आओगी।”

“तुम अभी तक गये नहीं ? चलो अच्छा ही किया। आज मैं भी जान बूझ कर देर कर के आई हूँ।” सुखिया घड़े में रस्सी का फंदा डालता हुई बोली।

छोटे ठाकुर साहेब की बाछें खिल उठीं। अपनी जेब से लाल-लाल कागज में लिपटे कंगन निकाल कर बोले—“कल तो तुम ने ऐसी आँखें गुरेरी थीं कि बस मैं भसम होते ही होते बचा। ऐसे कंगन दिल्ली कलकत्ते में भी...।”

सुखिया बीच में ही बोली—“कान खोल कर सुन लो ठाकुर साहेब—देर कर के इसलिये नहीं आई हूँ कि तुम बैठ

कर मुझे कंगन पिन्हाओ, पर इसलिये आई हूँ कि ये बात तुम्हारे और मेरे बीच ही रहे। अपनी खैरियत चाहते हो तो सीधे चले जाओ और फिर कभी इधर पैर न रखना। बड़े आदमी से रार अच्छी नहीं होती, इसलिये अभी तक चुप थी। मुन्ना के बापू के कान में भनक भर पड़ गई तो चूरा बन जायगा इन हड्डियों का।”

“बड़ा आया मुन्ना का बाप। ऐसे बड़े देखे हैं! रोज घर के दुआरे बैठ कर लाठी मँजने से ही लोग लठैत नहीं हो जाते।” अपनी नाजुक कलाई हवा में घुमा कर छोटे ठाकुर साहेब बोले।

सुखिया गुस्से से लाल हो गई। “तुम्हारी दो हड्डियों के लिये तो मैं ही काफी हूँ। मुन्नू के बापू तो.....” और भरा घड़ा उठा के छोटे ठाकुर साहेब पर पटकने को मुड़ी ही थी कि देखा ननकू मुन्नू को गोद में लिये खड़ा है। एक हाथ से तो मुन्नू को गोदी में ले रक्खा है और दूसरे से छोटे ठाकुर साहेब की गरदन पकड़ रक्खी है।

“दबा दूँ यहीं, सीधे प्राण निकल जायँ।” ननकू बोला। फिर अपनी मुट्ठी ढीली करते हुए बोला—“कोई और होता तो दबा भी देता पर बड़े ठाकुर साहेब का नमक खाया है। अदा न करें तो कम से कम उनका बंस तो ना मिटायें अपने हाथों से। सीधे चले जाओ और इस गाँव में किसी दूसरी औरत पर आँख उठाई तो फिर दूसरी बेर न छोड़ूँगा।”

सुखिया ओक से मुन्ना को पानी पिलाने लगी। बात वहीं की वहीं रह गई।

×

×

×

अभी ढंग से भोर भी न हुई थी। अपने घर लाल पगड़ी का आक्रमण देख कर ननकू के काटो तो खून नहीं। घबड़ाया-घबड़ाया बाहर आया तो हाथ में बेड़ी पड़ गई।

“मेरा गुनाह तो मुझे बता दो।” ननकू बोला।

“सीधे रहो।” लाल पगड़ी ने झिड़क कर कहा। “रात डाका डाला, सुबह पता भी नहीं। तुम्हें तो ठाकुर साहेब ने कल रात अपनी आँखों से देखा है।”

“अरे! वो तो पकड़ने को भी थे पर ~~खुल~~ चक्कू इस के हाथ में देख के रुक गये।” दूसरा बोल उठा।

सुखिया बहुत गिड़गिड़ाई पर क्या होना था। लोहे के बंगन पहन कर ननकू उनके पीछे हो लिया।

सिपाहियों के डर के मारे सहमा-सहमा मुन्ना किवाड़ों की ओट से झाँक रहा था।

— — —

ताई जी



जब नौ साल की थीं तब ताई जी की शादी हुई थी । ताऊ जी की अवस्था उस समय छठ्तीस-एक वर्ष की रही होगी । सुसराल के रिश्ते से वास्तव में ताई जी मेरी तइया सास लगती हैं । दाम्पत्य जीवन उनका बहुत छोटा सा बीता था । अपनी स्मृति के स्वरूप में दो पुत्र और एक पुत्री देकर ताऊ जी बहुत शीघ्र ही उन्हें छोड़ कर चल दिये थे । वास्तव में जीवन के दोनों पहलुओं ने एक साथ ही उनका द्वार खटखटाया था । ताई जी अभी अठ्ठारह ही वर्ष की थीं । वैवाहिक जीवन का बोध और वैधव्य हाथ में हाथ डाले उनके सामने आये थे ।

तेरह जेठ देबर थे । जीवन की सबसे कठिन मंजिल उन्होंने उन्हीं के बीच काट दी थी । युवा अवस्था के पदार्पण और प्रस्थान का ज्ञान भी संभवतः उन्हें न हुआ और अगर हुआ भी होगा तो कत्र के दिये के समान सारा समय सूने ही जल कर उन्होंने काट दिया होगा । अपनी पुत्री 'पाली' का विवाह भी वहीं से ताई जी ने कर दिया था । दुहेजिये के गई थी पर घर सम्पन्न था ।

ताई जी सुनाया करती हैं कि सुरमे का ताऊ जी को बहुत शौक था। उनकी आँखें कभी सूनी नहीं रहती थीं और उनकी बड़ी-बड़ी आँखों पर सुरमा अच्छा भी बहुत लगता था। बच्चों की आँखें देख कर यह नहीं लगता कि ताई जी उसमें कुछ अतिशयोक्ति करती हों। इत्र का भी वही हाल था। लोग कहते हैं, धोबी के यहां से धुल आने पर भी कपड़ों में से महक नहीं निकलती थी। ताऊ जी की दृष्टि में दाम्पत्य जीवन की आवश्यकता केवल वंश चलाने की परम्परा भर ही को थी। और प्रथम पुत्र 'गोपाल' ने इस इच्छा की पूर्ति कर दी थी। विवाह और मनोरंजन दोनों में ताऊ जी के लिए मीलों का फासला था। एक नौ साल की पत्नी के साथ पुरुष आशा ही और क्या कर सकता है। ताकत की गोलियां वे अवश्य अपने पास रक्खा करते थे और इसका कुछ असर गोपाल पर भी आ गया है। किसने किस की लाज संभाली है और किसने किस का घर चलाया है? एक बार मैट्रिक में फेल होने के बाद गोपाल की पढ़ाई बन्द करा दी गई। उसके छोटे भाई रामकृष्ण ने तो सम्भवतः मैट्रिक पास कर लिया। अब वह लड़ाई पर चला गया है।

एक रात गोपाल घर से गायब हो गया। ताई जी बहुत रोई धोई पर किस को अवसर था कि उसकी खोज खबर करता। सालों बाद ताई जी को एक चिट्ठी मिली कि वह कानपुर में नौकर है। बाज़ार का खाना खाते-खाते स्वास्थ्य खराब हो गया है; कुछ रुपये भेजता हूँ मेरे पास चली आओ।

ताई जी को अंधेरे जीवन में एक प्रकाश की रेखा भलकी और वे उसी के पीछे हो लीं।

×

×

×

जब ताई जी मुझ से मिली थीं तो उन्हें केवल एक धुन थी “गोपाल की शादी।” कोई लड़की दिखाओ। अब तो गोपाल ने रुपये इकट्ठे कर लिये हैं, अपने पास से शादी करेगा। जो जेवर देखतीं गोपाल की बहू के लिये पसन्द हो जाता। मेरी बहू आयेगी तो, बड़े चाव से ताई जी कहतीं, मैं यह करूँगी…… वह करूँगी……। मेरी सास भी मेरे ही पास थीं उन दिनों चटक कर बोलीं—“अभी जो कुछ करना है कर लो। जब तक नहीं आई है तभी तक के लाड़ हैं। जब आ जायगी फूटी आँख न सुहायगी। मैं तो जानूँ हूँ।”

शादी गोपाल की हो गई। न्यौता तो आया था पर मैं गई नहीं। सुना दिल्ली की लड़की है चतुर, होशियार।

×

×

×

सुनने में आता है, सास बहू में महाभारत छिड़ा रहता है। पहले महीने दो महीने, सुना, बहू आँसू पोंछ कर रह जाती थी पर अब जीभ खुल गई है और फिर जब खुली है तब अच्छी तरह। कभी-कभी घर में शोर सुन कर गोपाल बाहर ही से लौट जाता है। और यह सुनना तो उसके लिये मामूली बात है। “मैं अपने लड़के की दूसरी शादी कर दूँ। पर यह तो ऐसी है कि मायके भी तो नहीं जाती।”

गोपाल कान पर हाथ रख कर कहता—“ना अम्मा एक ही बहुतेरी है।”

“तू . . . तू तो बीबी का गुलाम है अगर तू ऐसा न होता तो भला क्या मजाल थी कि बहू यों करती । मुझे तो वहीं छोड़ आ, क्यों बुलाया था, मैंने आधी जिन्दगी काटी तो पूरी भी काट लूँगी।”

एक बार गोपाल राजी हुआ कि चलो छोड़ आऊँ चाचा ताऊ के पास तो ताईजी की आग में घी पड़ गया “हाँ मुझ ही को छोड़ने जायगा, अपनी बहू को मायके थोड़े ही ले जा सके है।”

गोपाल ने झोला उठाया और बाहर चल दिया ।

×

×

×

गोपाल अभी दफ्तर से लौटा था । बहू बर्तन माँज रही थी । माँ बेटों में पता नहीं क्या बात हुई कि गोपाल ने डंडा उठाया और बहू पर पिल पड़ा । पड़ोसिन ने आ कर हाथ पकड़ा और बोली—

“क्या अन्धेर करते हो; यह तो ख्याल रखो कि उसके दिन चढ़े हैं।”

अन्दर से आवाज़ आई ताईजी झुंझला कर कह रही थी—

“कौन पेट में लड़का बैठा है । लड़की होगी सो अभी मर जाय ।”

“तुम क्या पेट में देख आई हो, गोपाल की अम्मा, ऐसे न कहो, कभी तुम्हारे भी पैर भारी थे” और पड़ोसिन अन्दर चली

गई ।

गोपाल ने डंडा अलग रख दिया । अपने मुँह की ग्लानि और शर्म छिपाने के लिये वह कमरे में जाने लगा ।

“कहाँ जा रहा है गोपाल ?” ताई जी बोलीं । “आज तो मैं कढ़ाई चढ़ाऊँगी, पूरी बनाऊँगी, पूरी खा कर जइयो ।”

×

×

×

“तार आया है अम्मा ! बहन के यहाँ से दीखे है ।” गोपाल ने तार खोलते हुए कहा ।

ताई जी तरकारी काट रही थीं, दौड़ती हुई आई—“क्या लिखा है ।”

“लिखा क्या है, जैसी माँ वैसी बेटी ।” झुंझला कर गोपाल बोला, “लिखा है अपनी बहन को लिवा ले जाओ मैं तंग आ गया—मोहन ।”

ताई जी दहाड़ मार कर रोने लगीं । बहू पीछे सब सुन रही थी ।

“मेरा बिस्तरा बाँध देना जी !” देख आऊँ, क्या हो गया है ।” गोपाल ने बहू को आवाज लगाते हुए कहा ।

“अभी कहाँ जाओगे, मैं कढ़ाई चढ़ाने जा रही हूँ, पूरी खाकर जाना ।” बहू ने मुस्कराते हुए कहा ।

ताई जी की ज्वाला में घी पड़ा और जोर-जोर से रोने लगीं ।

“यह तो यही मनाती है हाय रे ! मेरे तो भाग फूट गये । मेरे तो रामकृष्ण का ब्याह हो जाय, मैं तो कभी इस घर में पैर

न रक्खूँ.....”

हलुवे की तश्तरी बढ़ाती हुई बहू बोली—“इसे तो खा लो
अम्मा जी ! फिर दूसरी बहू के जाना ।”

ताई जी ने तश्तरी के लात मारी; तश्तरी खनखनाती हुई
मोरी से जा लगी ।



कलुई

कलुई एक कुतिया थी। मौत सी काली और दारिद्र्य सी दुर्बल।

उसका दुर्भिन्न सा सूखा शरीर जग की लातों और दुतकारों से ही पलता।

क्षुधा कलुई के लिये ऐसी गहन समस्या बन कर आ गई थी कि अपना सारा शरीर तुड़वा कर भी कलुई उसकी पूर्ति न कर पाती। उपवास उसके करम ही में लिखे थे।

अपना जीवन उसे एक पहाड़ लगता।

एक दिन पोखरे के पास पीपल तले कलुई ने चार लाल जन्मे। कहाँ उसे अपनी ही देह पालना दूभर हो रही थी, कहाँ उसकी देह से चार और पलने लगे। कलुई भूख से अकुला उठी। दुर्बल देह ने दूर तो जाने न दिया। कलुई की क्षुधा-वृत्ति का आसरा पड़ोसी ही रह गये।

×

×

×

‘अरे ! वो गई ! वो गई ! अरे ! कोई पकड़ो उसे ।’ गंगा चिल्लाई।

“कैसे पकड़ो, कुछ कहोगे भी !” जादो भुँभलाया ।

“अरे वोही कलुई ! कहती भी क्या ? मरी घी की भरी कटोरी उठा कर ले गई । हाय रे ! मैंने उसी कलमुँही के लिये तों ता कर रक्खा था । आज कैसी मुश्किल से तो एक कटोरी घर का घी दीखा था ।” गंगा एक सांस में बोल गई ।

“अरे ! उस कलमुँही की न पूछो ।” पड़ोसिन आँगन की किवाड़ खोल कर बोली । “बस चूल्हे पर से दूध उतार कर ही रक्खा था कि पता नहीं कहाँ से ये कलुई पहुँच गई और मरी ने जलती कढ़ाई में मुँह दे दिया । मुँह भी झुलस गया होगा मरी का, पर क्या मजाल थी जो क्षण भर को भी मुँह तो फेरती ; एक ही सुड़क में सारा पी गई ।”

“इस की तो रोज़-रोज़ की हाय-हाय हो गई है ।” गंगा बोली ।

“पार्वती के घर पराँठों का भरा कटोरदान गायब हो गया । सारे घर में ऐसी ढूँढ पड़ी । मैंने कहा, हो न हो यह तो वही ले गई है कलुई महारानी । कहाँ तो बेचारी ने सिनेमा जाने के लिये पराँठे पका कर रक्खे थे और जाने की तैयारी करके बैठी थी और कहाँ बेचारी ने फिर से आटा संवारा और बैठ कर पकाए ।”

“अब की घर में घुसने भर तो दो इसे, मैं भी देख लूँगा,” जादो बोला, “न मरी की टाँग तोड़ी तो ।”

“खार खाये तो बंसी भी बैठा है महीनों से ।” पड़ोसिन

बोली, “पर आये भी तो हैं ऐसे चोरों की तरह कि परछाई भी नहीं दीखती।”

×

×

×

“अरे बंसी ! इधर अइयो, मैं तो किवाड़ पकड़े खड़ा हूँ । कुँडी खटकी कि बस.....जरा मेरा डंडा उठा दे । देख तो कैसे मजे में चाट रही है बर्तन । एक तू मार बस वहीं से । दबे पैर जइयो । और इधर आई तो एक मैं दूँ जोर का । टें न बोल गई तो देखियो आज यह ।” जादो ने बंसी को उकसाया । फिर क्या देर थी; एक कुहराम सा मच उठा ।

“अरे ! एक मेरी ओर से भी लगइयो ।”

“आज हाथ लगी है जाके ।”

“अरे ! यह जादो का दम था जो पकड़ पाया है इसको ।”

“इतने तो माल खाये पर रही सुसरी टाटरी की टाटरी ।”

सारे पड़ोस के कुहराम में कलुई की टें टें भी कब तक सुनाई पड़ती । उसके हड्डियों के पिंजर को तो एक डंडा ही काफी था; कहाँ उस पर डंडों की वर्षा हो उठी ।

“फेंक आ इसे वहाँ पोखरे के पास, सवेरे ले जायगी म्युनि-स्पैल्टी की गाड़ी उठा के ।” जादो बोला ।

×

×

×

कलुई के चारों लाल रात भर उसकी देह से लिपटे रहे ।

अपने जीवन के प्रभात में कलुई भी एक दिन अपनी माँ से इसी तरह लिपटी पड़ी थी ।

आवारा

“यों कहने को तो सारी दुनिया आ जावे है कि सौतेली माँ है। कोई इसके लच्छन भी देखे है। रात आया था आधी रात गये और अभी दिन नहीं निकला था कि रफू चक्कर हैं। शाहजादे हैं कहीं के, पका पकाया मिला गया, खा लिया। तुम्हीं ने बिगाड़ रक्खा है उस को। कुछ सुनते भी हो ? मेरा क्या है, तुम्हीं को पछताना पड़ेगा।” कहती हुई शहीदा रात की जूठी रकाबियाँ धोने लग।

“आज सबेरे ही सबेरे क्यों बरस पड़ी ? कोई बात भी हो, यह ही तो उमर है जरा धूस फिर लेने दो।” गफूर अपना हुक्का ठीक करता हुआ बोला।

“और क्या ! तुम बैठे हुक्का पिया करो, तुम्हारे शाहजादे लाट साहबी किया करें। एक मैं ही तो रह गयी घर की लौंडी ? सम्भालना अपना चूल्हा। आज मैं भी देख लूँगी।” एक क्रोध-पूर्ण आवेग में शहीदा उठ कर बाहर जाने लगी।

सबेरे की ठंडी हवा में अपनी छोटी-सी बान की मचिया पर बैठ कर हुक्के का रसास्वादन लेने में गफूर मियाँ को बहुत

आनन्द आ रहा था। शहीदा उनकी तीसरी पत्नी थी और समय असमय शहीदा उसका पूरी तौर पर लाभ भी उठाती थी। सबेरे ही सबेरे यह नाट्य हो जायगा उसकी उसको बिल्कुल आशा न थी। शहीदा को बाहर जाता देख कर वह एक साथ घबड़ा उठा और दौड़ कर उस का हाथ पकड़ता हुआ बोला—“शहीदा ! सच कहता हूँ खुदकशी कर लूँगा। अगर... अगर तूने एक कदम भी बाहर रक्खा तो ! आज आने दो रहमान को तू, भी क्या कहेगी अगर दुरुस्ती ना की उसकी तो।”

×

×

×

“ओहो ! तुम हो सुखिया काकी ? इधर किधर से आ रही हो अकेले इतनी रात गये ?” रहमान ने इक्के की लगाम खींचते हुए कहा।

“कहीं नहीं, ज़रा मेले गई थी। दो चार कपड़े सिये थे, सोचा, बिक जायँगे तो कुछ पैसे मिल जायँगे। आज कल बड़ी तंगी है। तुम क्यों देर करते हो, चलो, मैं आ जाऊँगी।” सुखिया चलती हुई बोली।

“इसी पर बैठ जाओ। गाँव ही तो चल रहा हूँ। मैं भी तो मेले गया था सवारी लेकर, क्यों नहीं मुझ से कहला दिया बिठाल लेता, अकेले इतनी दूर गईं।”

“मुझे क्या पता था कि तू इक्का चलाने लगा है।” सुखिया इक्के पर बैठती हुई बोली।

“अब्बा कहते हैं तू दिन भर निकम्मा बैठा रहता है, इक्का चलाया कर।” रहमान ने घोड़े की पीठ पर कमची रसीद करते हुए कहा।

घोड़ा एक कमची पा कर हवा हो रहा था। रास्ता काटने के विचार से सुखिया बोली—

“आज तो तेरे घर में बड़ा शोर मच रहा था।”

“काकी ! अल्ला सब कुछ दे, एक सोतेली माँ न दे।”

घोड़े की चाल धीमी पड़ गयी थी।

“तुम्हारे साथ भी बुरा हुआ काकी ?”

“क्या ?”

“अरे ! यह ही, चार छः महीने की सुहागिन बनीं।”

“अपना-अपना भाग है। यों तो कहते हैं लोग कि तुम्हारे काका ने अच्छा नहीं किया ब्याह कर के। पर क्या पता था ऐसा हो जायगा। मैं तो दूसरी ही थी। रामचन्द्र भी तो है। साल भर से दमे का रोग है। चौथी किये चार साल हो गये। यही लिखा था इसमें।” माथा ठोकती हुई सुखिया बोली। “जिन्दगी कपड़े सी-सी के काटूँ, तो मैं कहाँ से बदल देती। जिस के जाती यही होता।”

“गुजर चल जाती है ? रास्ता क्या हो गया है पहाड़। काकी ! तुम को चाकू नहीं दिखाया, आज मेले से लाया हूँ। सोचा, रात-बेरात इक्के पर बीतती है। साथ रहेगा तो सहारा रहेगा।” जेब से चाकू निकाल कर सुखिया को दिखाने लगा।

“चाकू तो चोखा है। अच्छा किया, ले लिया। मेरी क्या है, अकेले पेट की गुजर हो ही जायगी। बूढ़े मरद का भी बड़ा आसरा होता है। रहमान ! क्या कहूँ तुझ से……।”

“काकी ! ऐसी बात न किया करो।” बीच में काटते हुए रहमान बोला। “कभी कोई काम पड़े तो मैं क्या मर गया हूँ ? जब तक काका थे नई अम्मा की हिम्मत नहीं होती थी कुछ कहने की। जब से मर गये हैं तभी से विष उगलने लगी हैं। अब तो मैं फूटी आँखों नहीं सुहाता उन को।”

गाँव पास आ गया था। सुखिया ने कृतज्ञ नेत्रों से देखते हुए कहा—“तूने पहुँचा दिया तो आ गई आराम से, नहीं तो कहीं आधी रात गये पहुँचती।”

×

×

×

अमावस्या की अंधेरी रात, पूस का महीना। चाँद बिना तारों भरी रात बेंदी बिना सोलहों-शृंगार सी सूनी लगती। पोखरा शान्त था, मानो ठंड से ठिठुर गया हो। पीपल के पत्तों से ओस की बूंदें टप-टप करके पानी में चू पड़तीं।

रहमान अभी आ कर पीपल के पेड़ के नीचे बैठा ही था कि पानी में कुछ छप-छप का शब्द हुआ। एक साथ सतर्क हो कर वह उस की ओर देखने लगा। कोई जानवर होगा। जंगली जानवर तो कोई गाँव में है नहीं, कोई छुट्टा गाय-भैंस होगी। और फिर वह लापरवाही से रात्रि की गहनता में खो गया। फिर वही शब्द, जैसे कोई मनुष्य पोखरे में प्रवेश करना चाहता हो पर

जल की शीतलता उसे विचलित कर देती हो । रहमान का ध्यान एक विचार से दूसरे विचार पर दौड़ने लगा । सम्भव है, कोई चोर हो, अपना माल पानी में छिपाने आया हो । आज-कल चोरी भी बहुत हो रही है । परसों रामचन्द जमींदार के यहाँ सेंध लगी थी । एक साथ उसका हाथ कमीज की जेब पर गया । चाकू वहाँ मौजूद था । एक-टक आँखें गड़ा के देखते-देखते उसे जल ही में एक मनुष्य का आकार सा भी दीखने लगा । चाहे भय से उसके विचार साकार हो गये हों ।

वह पोखरे की ओर बढ़ता हुआ बोला—“कौन है ?”

एक हल्का सा पानी का शब्द और सब शान्त, जैसे कोई पानी में चौंक कर सतर्क हो गया हो ।

“कौन है ?” फिर ललकार कर रहमान बोला । “निकल आओ, नहीं तो मैं हाथ खींच कर निकाल लाऊँगा ।”

सब शान्त—

रहमान आवेश में शब्द की ओर बढ़ा । पानी की शीतलता, रात की ठंडक उसके आवेश में लोप हो गई । क्षण भर में वह आकार के सन्मुख था । एक झटके में आकार उस के हाथ में था और वह पोखरे के किनारे । जैसे बचपन में बहुधा पानी में घुस कर उसने कमलनाभ तोड़ी थीं ।

धीरे से उस ने सुना, जैसे कोई उसका नाम लेकर कह रहा हो । “रहमान ! मुझ को छोड़ दे ।”

“कौन हो तुम ? जोर से बोलो ।” आश्चर्य से रहमान ने कहा ।

“मैं.....हूँ.....सुखिया ।”

“तुम ? काकी ? और यहाँ ?” और उसकी मुट्ठी अपने-आप ही ढीली हो गई ।

“यहाँ क्यों आई ?” अपने को सम्भालते हुए उसने कहा ।

“यों ही ।”

“यों ही तो यहाँ इस वख्त कोई नहीं आता । साफ-साफ बताओ, नहीं तो सबेरे सारे गाँव में शोर कर दूँगा ।” रहमान ने दृढ़ता से पूछा ।

“मत पूँछ मेरा भाग्य । माँगने से मौत भी नहीं मिलती ।”

सुखिया का शरीर शिथिल हो रहा था । वह ज़मीन पर बैठ गई ।

“तुम यहाँ मरने आई थीं ? मुझे बता दो, कसम है मुझे अल्लाह की, कसम है मुझे अपनी अम्मा की जो हवा तक को पता चले । काकी मेरा भरोसा कर ।”

“अच्छा ही हुआ जो तू मिल गया । कोई मेरा बदला तो ले लेगा ।” सुखिया ने आह भर कर कहा ।

“तो सुन—रामचन्द्र ने सिलने को एक मिरजई दी थी । लेने आया । मैंने कहा—ज़रा बैठ जाओ, तनी टाक दूँ । तनी टाँकनी बाकी रह गई है । मैं अन्दर तनी लेने गई । उसने कुँडी चढ़ा दी ।” सुखिया आगे नहीं कह पाई ।

रहमान अपना चाकू खोलता हुआ बोला—“तुम ने पहले

क्यों न कहा था काकी ! आज रात इस रामचन्द्र के बच्चे की....” और क्रोध से वह दाँत पीसने लगा ।

“सुन रहमान !” सुखिया ने उस का हाथ पकड़ते हुए कहा । “मेरी आबरू की बात है । जो होना था, सो हो गया । तू कुछ भी कर दे, पर मेरा जो बिगड़ गया है अब वह न सम्भलेगा ।”

सुखिया का सारा शरीर काँप रहा था । बाह्य ठंड से या आंतरिक घृणा से ।

“काकी ! चल, तू मेरे साथ चल ।” रहमान सुखिया को उठाते हुए बोला ।

“तू चला क्यों नहीं जाता ? मुझे डूब मरने दे । इस गाँव में मैं मुँह नहीं दिखा सकती ।” सुखिया गिड़गिड़ाती हुई बोली ।

“मैं नहीं जाने का काकी ! तू चल मेरे साथ । कौन मेरा निकाह हो गया है जो कोई बैठ कर रोयेगा । तुम सिलाई करना, मैं इक्का चलाऊँगा । नई जगह जा कर कह देना यह मेरा छोटा भाई है ।”

पास इक्का खड़ा था और रहमान सुखिया को उस पर बैठा रहा था ।

इक्का चल दिया । बड़ी देर में—जैसे सोते से जागी हो—सुखिया बोली—“तू वहाँ क्या कर रहा था इतनी रात गये ।”

“मैं... मैं क्या करता । मेरा तो वही एक ठिकाना था । रात ग्यारह बजे सवारी पहुँचा कर घर आया । नई अम्मा ने

रोटी सामने रख दी । मैंने साग माँगा । बोली बड़ी कमाई करता है न जो साग खायेगा । मैंने खाना नहीं खाया । बिस्तरे में घुस गया । नई अम्मा का गुस्सा बड़ा तेज था । उठी और एक बाल्टी पानी मेरे बिस्तरे पर फेंक दिया और बोली—बड़ा शाहजादा बना है जो बिना साग रोटी नहीं खायेगा । मैंने सोचा—“जब भीगे बिस्तरे पर रात काटनी है तब चलो पीपल नीचे बैठ कर बीड़ी पीऊँगा । एक गज्रल अलापूँ, रात कट जायगी ।”

इक्का तेज रफतार से उड़ा चला जा रहा था पता नहीं किस ओर ।

×

×

×

सबेरा होने के पहले ही पहले सारे गाँव में खबर उड़ गई कि रहमान सुखिया को लेकर भाग गया ।

गफूर की चौपाल में नीम तले एक एक कर के सुखिया लोग इकट्ठे होने लगे । मचिया पर बैठा गफूर बड़ी गंभीर मुद्रा से हुक्का भर रहा था । अन्त में एक साँस भर कर खड़ा होता हुआ बोला—“वह तो आवारा था ही पर सुखिया की आँखों पर कहाँ का पर्दा पड़ गया ?”

केक वाला

“केक वाला हज़ूर !” नीचे से परिचित आवाज़ आई । मैं ने ऊपर ही से खिड़की से झाँक कर देखा । वही बुड्ढा केक-वाला काला काला-सा बक्स सर पर रखे हुए हाँफता चला आ रहा है । पेट के लिये इन्सान क्या नहीं करता ? यह इसका वृद्ध शरीर और यह विशाल पहाड़ की चढ़ाई । पेटी बरामदे में उतार कर वह पास में बैठ कर सुसताने लगा ।

माथे से पसीना पोंछते हुए फिर उस ने आवाज़ लगाई ।

“केक वाला हज़ूर !”

“तुम जब आते हो, तब ज़बरदस्ती केक खरीदना पड़ता है । सोचता हूँ बुड्ढा इतने ऊपर चढ़ कर आया है । अब तुम पिन्शन ले लो । समझे ! मैं ने उतरते हुए कहा ।

“बड़ा सबाब करते हो हज़ूर ! पेट भर जाता है उस ज़रा सी-छोकरी का । पिन्शन तो मैं ले चुका था पर क्या पता था मुकद्दर का ।” माथा ठोकते हुए उस ने कहा ।

“तुम्हारी लड़की है कोई छोटी ?” मैं ने आश्चर्य से पूछा ।

“लड़की नहीं है सरकार ! पोती है । बाप साल भर की छोड़ कर मर गया था । तभी से पाल रहा हूँ । एक ही लड़का था, उसी का मुँह देख कर जीता था ।” उस का गला भर आया । एक ठंडी साँस लेता हुआ बोला—“अल्ला को यही कबूल था ।” उसका गला रुँध गया और वह आगे न बोल सका ।

कुछ रुक कर फिर कहने लगा—“थका माँदा लौटता हूँ तो देखता हूँ सरकार ! कथरी के ऊपर सिमटी सिमटाई पड़ी है । सबेरे की रोटियाँ खा कर पड़ी रहती है । मेरा भी बुढ़ापा ठहरा हजूर ! रात को दिखता नहीं ठीक से ।”

“माँ भी नहीं है उस की क्या ?”

“माँ थी तो रोटि का सहारा था । कुछ कमा भी लाती थी । पास में मुहम्मद युसुफ के सुबह शाम रकाबियाँ धोने जाती । कुछ जूठा बचा शकीला को भी मिल जाता था । पेट तो पल जाता था दोनों का । इसी साल रोज़ों में वह भी चल दी और छोकरी को छोड़ गई । दुनिया तो बहुत देखी पर यह पहली बार देखा कि बच्चे की मुहब्बत……।”

“तुम भी क्या बातें करते हो; मौत पर किस का बस है ।” मैंने बीच में टोकते हुए कहा ।

“अगर मर जाती मालिक, तो सबर हो जाता । दाती पर पत्थर रखकर बैठ जाता । एक रात को सरकार शकीला जो रोये तो रोये चली जाय । मैंने आवाज़ लगाई, अरी सुनती नहीं लड़की रो रही है ।”

“पर क्या जवाब । साँप सूँघ गया क्या री । मैंने फिर आवाज दी । पर वहाँ कोई हो तो बोले । मैं ही गया उठ के । सोचा कहीं चली गई होगी, आती होगी । शकीला को लेकर सो रहा । रात को मुझे यों ही कम दीखे है । सबेरे देखा, कनस्तर खुले पड़े हैं । छोटी सी बकसिया थी, वह खाली पड़ी है । अपना तो जो था सो तो ले ही गई, संग में जो कुछ जनम की कमाई मेरी थी सो भी साफ कर गई । छोकरी को भी ले जाती, सो मेरे बुढ़ापे से बाँध गई । पड़ोसी कहने लगे यूसुफ का डरेबर गई रात यहाँ बैठा था । दर दर भटकता रहा, कोई नौकरी लग जाय चौकीदार, दरबान की । बुढ़ापे ने वह भी न लगने दी । और तो कुछ नहीं मालिक ! मेरा भरोसा क्या एक पैर कबर में दिये खड़ा हूँ । मैं भुक्क गया तो उस का क्या होगा ? उस को देखते ही ये फिकर मुझे सवार हो जाती है । मुकद्दर अपना !”

बकस सिर पर रख कर वह जाने को तैयार था । आगे बढ़ कर मैले कोट की आस्तीन से उस ने अपनी आँखें पोंछ डालीं ।



हरीरा

कुसुम सौरी में थी । नाइन बरोसी लेकर अन्दर आई ।

“तेल तो दे जाओ अम्मा जी, तनक गरम कर देई ।”
बरोसी पर हाथ सेकती हुई नाइन बोली । “आज तो बड़ी ठंडक है बहू रानी !”

अम्मा जी ने दूर से कटोरी में घी छोड़ते हुए कहा—“ख्याल रखना नाइन ! आज ठंडक बड़ी है । कमर खूब सेंक देना । सौरी की लगी ठंड हड्डी पकड लेती है । यह ले अजवायन ज़रा तेल में डाल कर गरम कर दीजो । सोंठ फाँक ली थी सबेरे बहू ?”

बहू ने सिर हिला कर हाँ कर दी ।

“सच सच बताना, कहीं कल की तरह से आज भी सोंठ की पुड़िया सिराने से निकले । कुछ खाये-पियेगी नहीं तो कैसे उठ कर खड़ी होगी । आज कल की लड़कियाँ तो घी के नाम से दूर भागती हैं; पहले कनस्तरोँ घी सौरी में उठ जाता था ।”

पतीली ताव पर आ गई थी । अम्मा जी ने हरीरा बघारने को घी छोड़ा ।

“सुन री नाइन, पहले बच्चे को तेल लगा कर सुला दे; फिर बहू के लगाना, नहीं बीच ही में रो उठेगा। कैसी हवा है आज तीर-सी।”

“अभी बाबू जी दौरे से नहीं आये अम्मा जी ?” अन्दर से नाइन बोली।

“अभी कहाँ अभी तो पन्द्रहियों में आयगा।” अम्मा जी मेवा सुधारती हुई बोलीं।

×

×

×

नाइन तेल मलने लगी। कब तक तेल मलेगी। कभी कभी कुसुम खीझ जाती। वह क्या करे लेटे लेटे। यह भी तो नहीं लेटे लेटे एक कहानी ही पढ़ ले। अम्मा जी कहती हैं सौरी में पढ़ने से आँखें कमजोर होती हैं। पता नहीं कहाँ-कहाँ के ख्याल उस को आने लगे। बड़ी ठंड है आज और वे दौरे गये हैं। पारसाल तो वह भी साथ गई थी और ऐसी ही ठंडक थी। डाक बंगले के पास ही कुम्हारों की बस्ती थी। दो चाक चल रहे थे। उन के यंत्र-चलित से सिद्ध हाथ मानो माटी के लोंदों को सजीव कर रहे हों। क्षण क्षण पर एक नवीन प्रतिमा उतार कर पृथ्वी पर रख रहे थे। ये दो चाक उसे विश्व के अनुरूप लगे। धुरी पर नाचती हुई पृथ्वी के चाक ही पर तो विश्वकर्मा मिट्टी को सजीव करके ये प्राणी बनाता है। और वे भी ऐसे ही क्षण-भंगुर हैं जैसे ये मिट्टी के बर्तन।

उत्सुकता बढ़ी और साथ में उन कुम्हारों के प्रति एक श्रद्धा।

और कुसुम उनके पास ही जा पहुँची। एक लड़का खेत से लाल लाल से फूल तोड़ कर लाया था, उन्हीं से रंग निकाल कर कुछ खिलौने रंग रहा था। एक छोटी लड़की पत्तियों से हरा रंग निकाल रही थी। उनकी काली काली आँखें, धूलि धूसरित बाल, मिट्टी सा उनका रंग, उसी मिट्टी का सा जिस मिट्टी के वे लाल थे। कुसुम को ऐसे याद थे जैसे वे कल की बात हो।

एक बुढ़ा पास ही रोटियाँ सेक रहा था। एक तवे पर था, एक आग में, कुछ पास सिकी रखी थीं। एक दो जल गई थीं। बुढ़ा उन्हें भाड़ रहा था।

“जा ये अम्मा को दे आ री सोना?” उसने आवाज़ लगाई।

सोना अपनी पत्तियाँ छोड़ कर भाग आई।

नाम तो बड़ा अच्छा है, कुसुम सोचने लगी। द्रव्य के प्रति प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर उसका नाम सोना रख दिया होगा। शायद वे सोचते हों, बार बार सोना बुलाने से कुछ अंश तो उसका घर में आ ही जायगा।

“जब औरत घर में है तो तुम रोटि क्यों पकाते हो बुढ़े ? और ये रोटियाँ काहे को जला डालीं ?” कुसुम ने बुढ़े के पास जाते हुए पूछा।

“कुछ दिखता कम है आँखिन से मालकिन ! याही से जल गई। सोना की माई बनावत रही रोटि, तौन चार रोज़ से सौरी माँ है।” बुढ़ा रोटियाँ भाड़ते हुए बोला।

“हम अन्दर देख आयें सोना की माई को।” कुसुम ने बुढ़े

से पूछा ।

“हाँ ! हाँ ! जाओ अन्दर मालकिन । लिवा ले जा मालिकन को अन्दर सोना ! माई के पास ।” बुड्ढा बोला ।

बिना किवाड़-चौखट का एक दरवाजा सा था जो रात को टटरी से बन्द कर दिया जाता था । कुसुम उसी से हो कर भीतर गई । बाहर तो जोरों की धूप थी पर अन्दर अंधेरा था । हाँ, ऊपर फूस में से जगह-जगह से धूप झाँक कर उसे प्रकाशित करने का प्रयत्न अवश्य कर रही थी । दो बड़े बड़े मटके एक ओर को खड़े थे । उन में सम्भवतः अनाज भरा था । एक ओर हंडियों और मिट्टी से रंगे खिलौनों का ढेर था । तीन ही चार रोज बाद कतकी का मेला था । शायद मेले के विक्रय के लिये ये उन की पूँजी थी । एक ओर पुआल के ढेर पर एक अर्ध-नग्न शरीर पड़ा था ।

कुसुम को देखकर उस नग्न शरीर में मानों कुछ चेतना आई और वह उठ कर बैठ गई ।

“ले माई रोटी ।” सोना ने दूर से पुआल पर रोटी फेंक दी ।

पास ही पानी-सा पड़ा था । कुछ सीलन हो रही थी । वहीं एक मटिया रक्खी थी, उसमें सोना ने पानी भर दिया । माँस का काला काला लोथड़ा एक बित्ता भर गन्दे कपड़े में लिपटा पास ही पुआल पर पड़ा था । शायद वही नवजात शिशु था ।

कुसुम उसे देखते ही सिहर उठी ।

“इस जाड़े में नंगी क्यों पड़ी हो ? और कुछ नहीं है तो ये

कथरी क्यों नहीं ओढ़ लेतीं ?” पास की पड़ी हुई कथरी पर संकेत करती हुई कुसुम बोली । “तुम अगर ठंड सह भी लोगी तो ये बच्चा तो न सह सकेगा । उसी को उढ़ा दो, आखिर खाली ही तो पड़ी है ।”

“दुई रोज़ बाद ओढ़ब मालकिन !” उसने क्षीण आवाज़ में उत्तर दिया । जौन-जौन कुछ एहि पुवले पर (इस पुआल पर) आई तौन सब नाउन ले जाई ।”

“अगर दो रोज़ के अन्दर हो ठंड लग गई बच्चे को तो क्या करोगी ? ना देना नाइन को, पहले बच्चे को तो बचाओ । ठंड भी तो कितनी है ।” कुसुम कुछ अधीर हो कर बोली ।

“ना कैसे देव मालकिन ! नाउन लड़ के ले जाई; पंच करके ले जाई । का छोड़ देई ?” सोना की माई ने मुस्करा कर उत्तर दिया ।

उसे आश्चर्य हो रहा था कि क्या ये ऐसे साधारण नियमों से भी अनभिज्ञ है !

कुसुम ने एक छिपी-छिपी दृष्टि कथरी पर फेंकी । सम्भवतः उस की आँखें उस का मूल्य आँकने का प्रयत्न कर रही थीं और उस का मस्तिष्क बार बार पूँछ रहा था । इस कथरी— इस बिथड़े के ढेर के लिये लड़ाइयाँ होती हैं ? क्या पंच किये जाते हैं ?

वह लौट आई । खाना न खाया गया । एक पुरानी चादर निकाल कर नवजात बालक के लिये जल्दी जल्दी से चार कपड़े

सिये । पर उस का हृदय कह रहा था, एक को तुम ने दो कपड़े, दे भी दिये तो क्या किया ? भारत के कितने लाल ऐसे ही पड़े होंगे !

“अरे ! बहू रानी !” अम्मा जी बोलीं—“हरीरा नहीं पिया अभी तक ? अब तो ठंडा भी हो गया होगा ? जल्दी पीजा तो नमकीन मुँह करने को मखाने तल दूँ ।”

कुसुम की निद्रा भंग हुई । हरीरा का गिलास उस ने मुँह से लगा लिया पर उसकी आँखों के आगे से पुआल पर पड़ी रोटियाँ नाच गईं ।



कोनी

ननकू को मरे चार बरस हो गये थे । गंगा ही जानती है उसने कोनी को कैसे पाला है । बस एक इसी आशा पर कि एक दिन अपनी कमाई के चार पैसे वह गंगा के हाथ पर रक्खेगा ।

कथरी में कोनी के पैर दबाते हुए गंगा बोली—

“आज तुझे बड़ी देर हो गई लाल ! अपने पैर तो देख कैसे हो रहे हैं बर्फ से ।”

सुबह की आधी रोटी रक्खी थी । गंगू ने कोनी को वही दे दी । खुद गुड़ की डली में से एक टुकड़ा तोड़ कर मुँह में डाल लिया और लेट रही ।

“अम्मा ! तुम ने नहीं खाया ?” कोनी को, जब आधी रोटी खतम हो गई, तब ख्याल आया ।

“खा लूँगी बेटा ! जब तू कमा के लायगा, तब रोज़ गुड़-रोटियाँ खाऊँगी ।” गंगा धीरे से बोली और उसका गला रुँध आया । आज कोनी को इतना ध्यान तो आया कि अम्मा ने कुछ खाया नहीं है ।

कोनी सिमट के अम्मा के पास लेट रहा । गंगा दिन भर की थकी थी, लेटते ही उसे झपकी आ गई । पर कोनी को न आई । उसका छोटा-सा मस्तिष्क अम्मा की बातों का रहस्य जानने की कोशिश कर रहा था । उसे पिछली बातें याद आने लगीं ।

“अम्मा, आज राजू की अम्मा ने लाल-लाल धोती पहनी; तुमने क्यों न पहनी अम्मा ?”

“मैंने ?—हाँ हाँ, मैं भी पहनूँगी । जिस दिन मेरा कोनी कमा कर लायगा, उस दिन देखिये, मैं कैसी लाल-लाल, पीली-पीली धोतियाँ पहनती हूँ । तू दिन भर मुहल्ले में ठलुआ घूम-घूम कर ये ही देखा करता है ।”

“अम्मा ! ओ अम्मा ! छोटेलाल हँसता है और कहता है कि तेरे घर में एक भी दिया नहीं है । उसके घर में इतने सारे-इतने सारे दिये हैं । तुम ने क्यों न जलाये अम्मा ?”

“मैं उसके चौगुने जलाऊँगी लाल ! जिस दिन तू इस लायक होगा न, उस दिन मैं इसके चौगुने जलाऊँगी समझा ?”

कोनी पड़ा सोचता रहा । पता नहीं कब उसे नींद आ गई और कोनी सपनों में खो गया ।

वो ओसारे में बैठा अम्मा की राह देख रहा है । अम्मा आई तो कोनी दौड़ कर अम्मा से चिपट गया ।

“अच्छा बता अम्मा ! मेरी मुट्ठी में क्या है ?”

“अरे ! वही होगी पत्थर की गोली ।”

“न”

“तो काँच का टुकड़ा ।”

“ये देखो !” और उसने अपनी मुट्ठी खोल दी । उसकी नन्हीं नन्हीं हथेली पर गोल गोल कुछ चमक उठा चाँदी सा ।

“आज तो—आज तो अम्मा मैं गया था मजूरी करने । यह देख मेरी अठन्नी ।” कोनी बड़े गवँ से बोला ।

“आज तो तू खायेगी न गुड़ रोटी ?”

अम्मा ने उसे सीने से लगा लिया ।

जब आँख खुली तो देखा कि दिन चढ़ चुका था ।

×

×

×

अम्मा काम पर चली गई तो कोनी बैठा सोचता रहा ।

सामने कल्लू इक्केवान रहता था । उसने घोड़े को दाना खिलाया फिर घोड़े को इक्के में जोत कर चलने को हुआ तो कोनी बोला—

“ओ काका ! आज हमें भी सिखा दो ।”

“क्या रे ?” कल्लू गरज कर बोला ।

कोनी सहम गया ।

“क्या रे ? बोलता क्यों नहीं ?” कल्लू ने फिर पूछा ।

“इक्का हाँकना ।” सहमी हुई आवाज़ में कोनी बोला ।

“ओ हो ! बढ़ा चला है इक्का हाँकने । कभी तेरे बाप ने भी हाँका था ?” कल्लू ठहाका मार कर हँस पड़ा ।

इक्का आगे बढ़ गया ।

दोपहर हो गई पर कोनी वहीं बैठा रहा अचल मूर्ति-सा ।

बैजू उधर से गुजरा तो कोनी की निद्रा टूटी ।

“काका मैं भी चलूँ दुकान पर ?”

“क्या करेगा ?”

“जो बता दोगे सो कर दूँगा ।”

“क्यों क्या काम छूट गया गंगा का ?” बैजू ने पास बैठते हुए कहा ।

“ना ।”

“सुन रे कोनी ! अम्मा आयेगी न, तो कह दीजो ?” धीरे से उसके कान के पास मुँह लगा कर बैजू बोला—“अभी भी आ जाये । रानी बना कर रखूँगा । सारी कमाई उसके हाथ पर रख दूँगा, समझे ?”

पता नहीं क्यों कोनी को बैजू की ये बात अच्छी नहीं लगी । बैजू ने उसकी पीठ पर हाथ मारा और उठ कर चल दिया ।

कोनी बैठा रहा । सांझ हो गई, गंगा आई, उसे समेट कर फिर सो रही ।

×

×

×

आज अम्मा कितनी खुश होगी कोनी ने सोचा और मजूरी की अठन्नी उसकी आँखों के आगे से नाच गई । अम्मा का ध्यान आते ही उसके बदन में एक नई स्फूर्ति आ गई और वह जल्दी-जल्दी मिट्टी ढोने लगा ।

अन्त में वह बेला भी आई जब जमादार ने कोनी का नाम पुकारा । कोनी के पीले पीले हाथों में अठन्नी चमक उठी और

अठन्नी की आभा से आँखें ।

वह एक ओर को हट गया । अठन्नी को उसने लौट-फेर कर कई बेर देखा और जोरों से मुट्ठी में भींच लिया और घर की ओर चल दिया ।

उसका छोटा-सा मन आज अम्मा के लिये पूरा संसार खरीदने के लिये व्यग्र हो रहा था ।

चबेने की दुकान पड़ी तो खड़ा हो गया । गुड़ पर आँखें गड़ गई । मुट्ठी खोल कर अठन्नी देखी । सोचा टूट जायगी । फिर आगे बढ़ गया । हरी हरी चूड़ियाँ, लाल-लाल धोती उसकी नज्दों के आगे से गुज़र गई । उसका मन करने लगा कैसे उड़ कर अम्मा के पास पहुँच जाऊँ । सोचता-सोचता चला जा रहा था, उसे पता न चला कि कब बाज़ार आया ।

“दीखता नहीं क्या ?” एक ने टोककर कहा—“ऐसी ठोकर लगती कि मेरा सारा दूध धूल में मिल जाता ।”

अब तो घर आ गया । कोनी ने अपनी रफ्तार तेज़ कर दी । मुट्ठी फिर खोल कर देखी कि अठन्नी हिफाज़त से है कि पीछे से एक धक्का लगा और वह धूल में गिर गई ।

कोनी पागलों सा धूल में अपनी निधि खोजने में व्यस्त था । पों—पों—पों पीछे से मोटर का हौर्न सुनाई दिया ; पर कोनी व्यस्त था ।

“सुनाई नहीं पड़ता क्या कि मोटर आ रही है ?” एक ने उसका हाथ खींच कर किनारे किया ।

कोनी हट तो आया पर आँखें न हटीं । वहीं धूल में अपनी कमाई खोजती रहीं । सहसा मोटर की रोशनी में कुछ चाँदी सा गोल-गोल चमका ।

कोनी एक साथ उस पर झपटा । एक क्षण भर में अठन्नी उसकी मुट्ठी में थी । कड़कड़ाहट के साथ मोटर पर ब्रेक लगे ।

भीड़ इकट्ठी हो गई । गंगा भी काम से लौटी थी । यह कैसी भीड़ है ? गंगा भी उसमें जा मिली । बज्रपात हो गया उस पर !

×

×

×

पास खड़ा पुलिस का कान्सटेबल लारी का चालान कर रहा था ।

राजा मुन्ना

देवनारायण ने कोट उतार कर खूटी पर टाँगा और यशोदा की गोद में दो सन्तरे फेंक कर बोला —

“लो, ये सन्तरे लाया हूँ । खा लेना ।”

“कहाँ से ले आये ?” अचरज से यशोदा ने पूछा ।

“मैंने सोचा रोज़ सवारी में पैसे फेंकता हूँ, आज से घर पैदल ही चला आया करूँगा । थोड़ी देर ही में पहुँचूँगा और क्या होगा ? उन पैसों के मैं सन्तरे ले आया ।”

“ऐसे कब तक चलेगा ?” यशोदा सब्जी काटती हुई बोली ।

“क्यूँ, तीन महीने की बात तो रह गई है । तीन महीने मैं पैदल ही आ जाऊँगा, पर लड़का अकलमन्द होगा । सुना है सन्तरे से बुद्धि बड़ी तेज होती है ।”

“लड़की हो गई तो ?”

“लड़की कैसे हो जायगी ? लाल कुएं वाले पंडित जी की कोई बात कभी झूठी निकली है ?”

“उनकी कृपा से तो यह दिन देखने को मिला है ।” यशोदा

ने उसास लेते हुए कहा।

×

×

×

“आज फिर कुछ ले आये ?” यशोदा राजा मुन्ना को खटुलिया पर लिटाती हुई बोली।

“तुम्हें क्यों बुरा लगता है ? तेरे लिये थोड़े ही लाता हूँ। कोई चीज लाया करूँ तो मत टोका कर। बच्चों की चीजों को कभी टोका भी जाता है ?”

“मुझे क्यों बुरा लगता ? मुन्ना की चीज देख कर मुझे बुरा लग सके है ? पर अपनी हालत भी तो देखो, जूते फट रहे हैं। रोज़ दफ़्तर से पैदल आते हो पसीने में तर। अपने जूते ही खरीद लेते।”

“जूते भी आ जायेंगे। अच्छा ये ले मुन्ना का भूला। आठ महीने का हो जाय तब इसके लिए गुँडलियाँ लाऊँगा जल्दी से चलना सीख जायगा।”

और देव नारायण ने रंगीन रस्सी निकाल कर बरामदे की शहतीर से राजा मुन्ना के लिए भूला डालकर तभी चैन ली।

×

×

×

“क्यूँ आज महरी नहीं आई ? तुम बैठी कैसे बर्तन माँज रही हो ?” देव नारायण खटिया पर बैठता हुआ बोला।

“महरी का मैंने इस महीने हिसाब कर दिया।” यशोदा बर्तन उठाती हुई बोली।

“भला क्यों ? अच्छी खासी आके दोनों वख्त काम कर

जाती थी, वख्त-बेवख्त का तुम्हें आसरा था ?”

“बर्तन ही कितने निकलते हैं। क्षण भर में माँज धो के धर दिये। अब आखिर राजा ऊँचे दर्जों में आने लगा, रोज तो उसे एक नयी किताब चाहिये। मैंने सोचा—चलो ये मेहरी के चार रुपये उसकी फीस ही में जुड़ जाएंगे।” और यशोदा भी खटिया लचा के लेट रही।

“राजा क्या सो गया ?” देव नारायण ने करवट बदलते हुए पूछा।

“वो तो सरे शाम का बाहर गया था सो अभी तक लौट ही कर नहीं आया है। उसी की राह देख रही हूँ। आये तो कुँडी लगाऊँ। मेरी तो आँखें भंपी जा रही हैं।

और यशोदा राह देखते ही देखते सो गई। बड़ी रात गये राजा दबे पाँवों घर में घुसा; चुपके से खटिया लचाई और पड़ रहा। और अब यह उसका रोज का नियम हो गया। कभी जल्दी सो जाता तो रात को उठकर चला जाता; कभी सरे शाम बाहर चला जाता तो आधी रात बीते लौटता।

उसके पैर कुमार्ग की ओर उठ चले थे।

×

×

×

“ये ले राजा ! मैंने तेरे लिये ये खूब मोयन डालकर मठड़ी उतार दी हैं। समझा ? और ये ले तेरे बेसन के लड्डू। सवेरे एक गिलास दूध के साथ एक-एक खा लिया करियो। पता नहीं विदेश में क्या खाने पीने को मिले।”

यशोदा ने कनस्तरी कपड़े से बांध के उठा के ताख पर रख दी ।

“पढ़ाई क्या , लोहे के चने चबाने हैं ।” यशोदा बोलती ही गई । “देख राजा ! खाने पीने में तो कमी करियो मत । पर देख बेटा ! और जो खर्च हो न, सो ज़रा हाथ रोक के करियो । तेरे लालाजी ने एक-एक करके पैसा जोड़ा है कि अपने राजा को कालेज में पढ़ाऊँगा । वृद्ध अवस्था ठहरी । आफिस से आते हैं थके माँदे, फिर ट्यूशन पे चल देते हैं ।”

राजा अपना बक्स ठीक करने में लगा था । पहली बार उसने एक सूट सिलवाया था ।

×

×

×

“अब तो पहुँच गया होगा राजा ।” यशोदा ने धीरे से पूछा ।

“हां कब का ! घर कैसा सूना दिख रहा है ।” देव नारायण ने आँखों की कोर से आँसू पोंछते हुए कहा ।

यशोदा की आँखें भी भर आई । किवाड़ की ओट में पल्ले के छोर से अपनी आँखें पोंछकर यशोदा खटिया बिछाने लगी ।

×

×

×

ट्यूशन से देव नारायण चूर होकर लौटा था ।

“देखना ! राजा की सी चिट्ठी जान पड़े है । अब की बड़ी देर से आई ।” यशोदा ने चिट्ठी बढ़ाते हुए कहा ।

देव नारायण ने पोस्ट कार्ड इधर-उधर लौटा और बोला—
“है तो उसी की ।” और फिर पढ़ने लगा ।

यशोदा आतुरता से उसका मुँह निहारने लगी। आज अगर उसे चिट्ठी बाँचना आता होता तो भला इस तरह अपने लाल की खबर अपने पास होते हुए भी उसे जानने के लिये इस तरह छटपटाती।

चिट्ठी पढ़ कर देव नारायण गंभीर होकर बोला—“यों लिखा है कि मेरी चिट्ठी ना गई इधर, सो अम्मा बड़ी बेचैन होंगी। पर मैं बड़ा बीमार था सो खत न डाल पाया। अब तो पहले से ठीक हूँ पर कमजोरी बहुत हो गई है। डाक्टर यों कहे हैं; कि दूध फल खाओ तब ताकत आयेगी। दो चार दवा की शोशियाँ लिख दो हैं—पर मैंने तो पैसे की सोच एक भी न खरीदी। दूध फल खाऊँ और दवा मँगाऊँ तो पूरे पचास के चक्कर में पड़ जाऊँगा। और यूँ लिखा है कि अम्मा को ना बताना नहीं तो फिकर में दुबली हो जायेगी।”

“लड़का अक्लमन्द हो गया है।” देव नारायण टिप्पणी करता हुआ बोला। “यों लिखा है कि पोस्ट कार्ड लिख रहा हूँ जब दो पैसे में खबर पहुँच जाय तो दो आने खर्च करने से क्या फायदा? और यूँ भी लिखे है कि मेरी बीमारी का ख्याल करके कहीं तुम भी रुपये न भेज देना।”

यशोदा के सामने राजा का बीमारी से सुँता हुआ चेहरा खिंच गया। वह भावी आशंका से बोली—“कहीं कुछ हो न जाय उसे। एक तो पढ़ाई ऊपर से कमजोरी। कल को उसे ५०) मनी-आर्डर कर देना। मेरी दोनों चूड़ियाँ उतने में उठ आयेंगी।

क्या करना है मुझे इन जेवरों का । मेरा जेवर तो राजा है ।”

देव नारायण उठता हुआ बोला—“अपनी चूड़ियाँ क्यों दो हो । मैंने दूसरी ट्यूशन से साइकिल के ५०) जोड़े थे सोई भेज दूँगा ।”

×

×

×

“कोट का कपड़ा तो खरीद दिया, चन्द्रकान्ता को । अब बेटा दाम कहाँ से दोगे ?” विनोद ने राजा की पीठ पर हाथ मारते हुए कहा ।

“दाम भी दे दूँगा । ऐसी कच्ची गोलियाँ नहीं खेलता हूँ । देखना एक ही पोस्ट कार्ड में न रुपया चला आए तो । घर से रुपया मंगाना तो कोई मुझ से सीखे । साथ गई थी, कुछ खरीद के ना देता तो क्या सोचती कैसे मर भुक्खे घर का है ।” और राजा सिगरेट का धुँआ हवा में उड़ाने लगा ।

खट ! खट ! खट !

राजा ने कुँडी खोली ।

“मनो आर्डर है बाबू जी !” पोस्टमैन बोला ।।

न्याय

अखबार का एक पन्ना लौटा फिर दूसरा। दूसरे पन्ने में बड़े बड़े अक्षरों में लिखा था :—

“ पुत्र ने पिता को मार डाला ”

“आगरा—घनश्याम (आयु २७ वर्ष) ने अपने पिता को सोते समय तेज चाकू से शरीर पर कई घातक ज़ख्म कर के मार डाला। खून से लथपथ कपड़े पहने और हाथ में चाकू लिये वह सीधा कोतवाली पहुँचा और उसने अपने को पुलिस के हवाले कर दिया।

इस का कारण माता के साथ पिता द्वारा किया गया असहनीय दुर्व्यवहार था। पिता का इधर दूसरी स्त्री से अनुचित सम्बन्ध था। अपनी पहली स्त्री तथा बच्चों के साथ वह बड़ी निर्दयता से पेश आता था।”

दूसरे कौलम में पास ही छोटे-छोटे अक्षरों में लिखा था :—

“तेल में मिलावट”

“मथुरा—तेल में किसी अनुचित चीज की मिलावट होने के

कारण एक भोज में सम्मिलित २० व्यक्तियों के शरीर में जहर का प्रकोप । बीमार अस्पताल भेज दिये गये । अस्पताल में दो की मृत्यु । याद रहे, एक मास पूर्व, एक भोज में ऐसी ही एक घटना पहले भी हो चुकी है । राशनिंग अफसरान इधर ध्यान दें ।”

अखबार के एक आध पन्ने और उलटे ।

“मुफ्त दूध”

“कानपुर—अपनी इकलौती सन्तान के निधन पर राय बहादुर बद्रीप्रसाद ने सौ निर्धन बच्चों को दूध बाँटा । दूध में कुछ खराबी होने के कारण कुछ बच्चे वहीं अस्वस्थ हो गये । डाक्टरी सहायता तत्काल ही पहुँच गई । चार की अवस्था चिन्ताजनक है ।”

अखबार पर सरसरी निशान फेंक कर उसे एक किनारे फेंक दिया ।

×

×

×

दो चार दिन बाद ‘प्राँतों से’ के कालम में निकला:—

“मथुरा—तेल में घातक वस्तु की मिलावट के कारण मुसद्दी लाल बनिये के ऊपर राशनिंग अधिकारियों ने सिटी मैजिस्ट्रेट के इजलास में मुकद्दमा दायर कर दिया है ।”

“आगरा—पिता की मृत्यु करने के कारण घनश्याम और उसकी माँ पर कत्ल का दावा किया है । माँ पर अभियुक्त को भड़काने का आरोप है ।”

और कुछ खबरें थीं इधर उधर की ।

“पैट्रोल पर से प्रतिबंध उठने वाला है।”

“भयानक आँधी में “कीन्स्वे कैम्प” के शरणार्थियों ५ पड़े टैन्ट हवा में उड़ गये हैं और वे फिर से बेघरबार के हो गये हैं।”

एक आध चित्र थे।

“पाकिस्तान के प्रधान मंत्री भारत आ रहे हैं। पंडित जवाहर लाल नेहरू उनका स्वागत करने ‘ऐरोड्राम’ गये हैं।”

“राजकुमारी अमृतकौर और उनके साथी ‘स्विट्ज़र लैंड’ का बर्फीला दृश्य देख कर लौट रहे हैं।”

तस्वीरें देख कर यह अखबार भी किनारे डाल दिया गया।

×

×

×

कुछ दिनों बाद फिर दृष्टि पड़ी। अखबार में निकला था :—

“मथुरा—मुसद्दी लाल बनिये को तेल में किसी घातक चीज की मिलावट करने के अभियोग में स्थानीय सिटी मैजिस्ट्रेट ने २० रुपये जुर्माने का हुकम दिया है। जुर्माना हाज़िर न करने पर एक मास का कारावास।”

“आगरा—स्थानीय जज साहब ने घनश्याम नामक १७ वर्षीय युवक को अपने पिता को कत्ल करने के अपराध में आजीवन कारावास का दंड दिया है। घनश्याम की आयु कम होने से उसे मृत्यु दंड से मुक्त किया जाता है। अभियुक्त ने अपने पिता को किसी पैसे हथियार से सोते समय मारा था। कहा जाता है वह अपनी माता तथा भाई बहनों पर पिता द्वारा

किये गये बर्बर अत्याचार न देख सका। उसके पिता का किसी दूसरी स्त्री से संबंध था।”

दूध द्वारा अस्वस्थ हुए बच्चों का कोई समाचार नहीं निकला। न उन चारों का जिन की कि हालत खतरनाक थी।

×

×

×

अपने और अपने परिवार पर किये गये अत्याचारों से विकल हो कर किसी एक मनुष्य को मारने की हल्की सजा आजीवन कारावास।

और अनेकों मनुष्यों को केवल अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिये मारने का कठोर दंड २० रुपये जुर्माना !

कुर्त्ता-टोपी

कील पर एक कुर्त्ता टंगा था और एक टोपी । कुर्त्ता देर से कुल्ल कहने की सोच रहा था पर साहस न पड़ता था । वह दूर देश का वासी था । पता नहीं क्यों वे उँगलियाँ उसे बरबस ही टाँग जाती थीं ।

कुर्त्ता टंगे-टंगे सोचने लगा—कितनी हल्की है वह टोपी और कितनी सुडौल । एक मेरा अंग देखो, कैसा बेडौल है । उस दूर देश में कैसी अच्छी लगती है तिरछी तनी हुई; एक मैं हूँ ढीला ढीला । अभी सोच ही रहा था कि उँगलियाँ आई और बिछोह कर दिया ।

×

×

×

कहीं रात गये फिर मिलन हुआ । भीनी-भीनी सी महक आ रही थी टोपी से । सहसा उसे याद आई; एक बूँद उसके शरीर पर भी तो गिर पड़ी थी । कितना सुखद था वह स्पर्श, पर उन उँगलियों ने एक क्षण भी तो न रहने दिया । शरीर पर मसल-मसल कर ही तो चैन ली ।

टोपी की महक कुर्त्ते के रोम-रोम में समाने लगी । मन अधीर

हो उठा, सोचने लगा कुछ कहने की, पर सोचता ही रह गया कि टोपी बोली—

“भला यह बदबू-सी कहाँ से आ रही है ?”

कुर्त्ते पर मानों वज्र गिरा ! बाणी ही खो गई, कुर्त्ता बोलता तो क्या ? टोपी की भीनी-भीनी महक में वह अपने को तो भूल ही गया था । पता नहीं क्यों रोज़ संध्या को बाँहों में से ये दुर्गन्ध सी आया करती है । भाग्य देखो अपना ! कुर्त्ते ने एक उसास लेकर सोचा । एक वह है, संध्या को आती है सुगन्ध से भीनी । एक मैं हूँ । अपने शरीर से उसे स्वयं ही ग्लानि होने लगी ।

×

×

×

आज तो उसने सोच लिया था कि वह कह कर ही रहेगा । जो व्यथा रात-दिन उसको व्याकुल बनाये रखती थी, आज तो वह उस का उत्तर लेकर ही रहेगा ।

अधीर हो राह देखने लगा कि उँगलियों का स्पर्श हुआ और टोपी इठलाती हुई अपने चिर परिचित स्थान पर आ टँगी ।

सोच तो बहुत कुछ रक्खा था पर कुर्त्ते से बोलते न बन पड़ा कि टोपी बोली—

“आज तो बड़े अच्छे दिख रहे हो ।”

“स्नान किया है ।” कुर्त्ता मन ही मन में प्रसन्न होता हुआ बोला ।

फिर निस्तब्धता छा गई ।

अपना सारा साहस बटोर कर कुर्ते ने धीरे से पूछा—

“संग तो मेरे रहती हो तुम, मेरी चिरसंगिनी बन जाओ न !

टोपो लजा गई—“मैं…मैं तो…”

“रुक क्यों गई ?” कुर्ते ने अधीरता से पूछा ।

“मैं तो वचनबद्धा हूँ । धूँ घर वाली लटें बार-बार मेरी छोर को छू-छू कर नित यही पूछती थीं । जब तक मैं उनके समीप होती वे मेरी कोर से लिपटी पड़ी रहतीं । उन की धीमी महक मेरे मन में समा गई । और मैं उन्हीं की हो ली ।”

×

×

×

कुर्ते ने एक उसास भरी ।

नित समीप रह कर भी मेरी प्रिया मुझ से कितने दूर रहेगी !

सोने की करधनी

उमा गौने को आई तो देखा, लाला जी खाट से लगे हैं। अभी तो अच्छे खासे थे। बहू का पैर ही ऐसा है जो ससुर को भारी पड़ा। इससे क्या हुआ कि लड़के की शादी उस की सास ने ऐसी करने की सोच रखी थी जो कुनबे में कभी न हुई हो। लालाजी ने बहुतेरा समझाया, अपनी मियाद ही में रहना अच्छा होता है पर उन्होंने साफ साफ कह दिया था कि—

“सुन लो ! सारा तो कुनबा जुटेगा और सोने की करधनी बरी में जायगी और अंग्रेजी बाजे से बरात चढ़ेगी। तुम ने सदा मेरी नाक कटवाई है। अगर तुम से इन्तजाम न हो सकेगा तो मैं करके दिखा दूँगी।”

और उन्होंने कर ही तो दिखाया। कुनबा भी था कौरवों का। इतना जुटा कि उसकी देख भाल भी ठीक से न हो सकी। सोने की करधनी भी चढ़ी और अंग्रेजी बाजा भी बजा।

महीना भर तो बीत गया; फिर चारों ओर से तकाजे शुरू हो गये। सुनार रोज़ गद्दी पे जाते समय रास्ते में लाला जी को राम राम कर जाता। पंसारी दूसरे तीसरे दिन अपने लड़के को

भेज देता । शादी का मिला जुला अंग्रेजी बाजे के हिसाब में चुक गया । इधर लड़के का इम्तहान पास आ रहा था । उसकी बी०ए० की फीस जमा करनी थी । घर का खर्च कोई कम न था । उमा की सास की रिश्तेदारी में इस बात की खास शान थी कि न मैंने कभी मोटा पहना न बच्चों को पहनाया ।

ऊपर की कमाई से लाला जी ने बहुतेरी पूर डालनी चाही पर कितनी पड़ती; वे बिस्तरे से लग गये ।

अपनी बीमारी का एक बड़ा कर्जा श्याम बिहारी के लिये छोड़ कर लाला जी इस असार संसार से कूच कर गये ।

×

×

×

श्याम बिहारी पर सारा बोझ आ पड़ा । उसने उमा की ओर देखा और उमा ने अपने सुहाग की ओर । इन्हीं को कुछ हो गया तो मैं क्या करूँगी इन जेवरों का । और वह करधनी जिस को अभी उमा ने जो भर के देखा भी न था बिक गई ।

×

×

×

एक फिकर अभी उतरी न थी कि दूसरी चढ़ने लगी । और तीन ननदें तो छोटी थीं पर इन्दो तो सयानी होने लगी थी ।

उमा ने बचे खुचे जेवर उतार कर ननदों को पिन्हा दिये । और कोई चारा भी न था ।

“तुम्हारी बहू सीधी है ।” पड़ोसिन बोली—“हमारी तो एक चीज को हाथ भी न लगाने देती ।”

“सीधी जैसी है सो तो मुझ से पूछो । कुढ़े है जी मैं कि

कहाँ से ननदें आ गई जो मुझे सारे काम करने पड़े हैं। मैं तो यूँ कहूँ हूँ कि करम की खोटी है। करम अच्छे होते तो इतने ज़ेवर चढ़ाने पर भी ये नंगी बूची दिखाई देती ? ये चीजें तो अपने भाग्य की ही हैं। मैंने तो सोने की करधनी तक चढ़ाई थी पूरे सात लड़ों की। पर इसके कर्मों में होती तभी तो पहनती। सो भाग तो ऐसे लेके आई कि पहली चीज़ ही बिकी।”

बहू का ज़िक्र छिड़े पीछे अम्मा जी अपने आप को रोक न पाती थीं।

“सोई तो कह रही हूँ।” पड़ोसिन बोली। “उस ने दे दी, तभी तो बिक गई वो करधनी। इन्दो को ज़ेवर उसने अपने हाथ ही से तो निकाल कर पिन्हा दिये। मेरी बहू जैसी से तुम्हारा पाला पड़ता तो जान पड़ता। परके लल्लू के घाटा आ गया; दिवाले की नौबत आ पहुँची। बहुतेरा समझाया बहू को; घर की इज्जत का सवाल है; ज़ेवरों से लाज बच जायगी घर की। पर उसके कान पर काहे को जूँ रेंगने को थी। एक ना निकाल के दिये। और ऊपर से जा के सारे मायके छोड़ आई।”

“वो ही बात हुई ना, उसके भाग्य के थे सो न बिके। इसके भाग्य में ना थे सो जब से आई है बिकने ही की नौबत आ गई।” अम्मा जी पूजा की कोठरी में जाते हुए बोलीं।

उमा के कानों में भी अम्मा जी की विषभरी वाणी पड़ी। उमा तिलमिला के रह गई।

“अम्मा जी ठीक ही तो कहती हैं। ताई जी ! मेरे भाग्य ही

बुरे हैं। बुरा करने पर तो बुरा मिलता ही है, मेरे भाग ऐसे हैं कि अच्छा करने पर भी बुरा मिलता है।

और उमा ने अपनी आँखों के कोर से आँसू पोंछ डाले।

×

×

×

सोच तो श्याम बिहारी कई दिन से रहा था पर आज थाली देखकर उसके मुँह से निकल गया—

“अम्मा रोज़ शाम को पूड़ी उतारो हो, कभी कभी रोटी भी बना लिया करो। बड़ी मंहगी का ज़माना है। पूरे कुनबे में कैसे पूर पड़े।”

अम्मा पूरी तलते हुए बोलीं—“सिखा दिया होगा ! तेरी बहू जैसे कमीने घर से आई है वैसा ही हम को भी बनाना चाहती है।

श्याम बिहारी बीच में काटता हुआ बोला—“अम्मा उस का नाम बीच में क्यों लाती हो ? यह तो मैंने यूँ ही कहा था कि इन्दो का ब्याह तो उमा के गहनों से हो गया पर बिन्दो का कैसे होगा ? वो भी तो सयानी हो चली है। फिर किशन की फीस भी बढ़ने लगी है। उधर उमा का हाल तुम्हें पता ही है।”

कढ़ाई चूल्हे पर से उतारते हुए अम्मा जी बोलीं—“हाँ ! हाँ ! वोई तो कह रही हूँ, अभी पेट में आया नहीं कि अपने कुनबे की फिकर पड़ गई। जो किशन की फीस गिनने लगा। तुम्हें नहीं पढ़ाया था मैंने ? तूने किशन को पढ़ा दिया तो क्या हुआ ? आज नया ज़ाला है इन्दो, नन्दो, चन्दो और बिन्दो के नाम गिनने। क्या होगया जो तूने बहनों का ब्याह कर दिया

तो ? तेरी बहू को नहीं चढ़ाई थी मैंने सोने की करधनी ।”

श्याम बिहारी झल्ला कर बोला—“आ गई न बीच में “सोने की करधनी !” सोने की करधनी ! जब पहनी नहीं तब तो तुम इतने पीछे पड़ी हो अगर कहीं वह पहन लेती तब तो तुम उसकी जान ही ले लेतीं । पता नहीं अम्मा ! तुम उससे क्यूँ खार खाये रहती हो ? वह तो कभी तुम से लौट कर बात भी नहीं करती और तुम हर वख्त उसको सुनाया करती हो ।”

“हाय रे ! कैसा आके लड़ने लगा है अपनी बहू की ओर से ! अब ये दिन देखने पड़ गये मुझे कि पीछे बहू देखती रहे और लड़का आ के चार सुना जाय । अगर आज को वे ज़िन्दा हांते तो काहे को सुनना पड़ता मुझ को ।”

घर में प्रलय आ गया । रोटियों से बात करधनी पर उतर आई । श्याम बिहारी थाली छोड़ कर उठ गया । अम्मा जी ने पूड़ियों की लोइयों में जो हाथ मारा सो सारे घर में बिखर गई ।

“क्यूँ लड़ आये अम्मा जी से मेरी ओर से ?” उमा अन्दर जा कर श्याम बिहारी से बोली । “उनकी तो आदत ही है कोई बदल थोड़े ही जायगी । मुझे क्या उनकी बातें बुरी लगती हैं ?”

पर उमा अन्दर ही अन्दर घुलने लगी ।

×

×

×

रही सही तन्दुरुस्ती उमा की बच्चों ने ले ली । हर दूसरे साल प्रसूत की पीर भेलने पर भी उमा की गोद अभी तक सूनी थी । अगर कोई बालक पहला साल पार भी कर लेता तो दूसरा

साल कभी न लाँघ पाता था। अम्मा जी सबेरे सबेरे राम नाम की माला फेरते फेरते उमा को सुना देती।

“तेरे बच्चे क्या जियेंगे। तेरे दूध में विष है विष।”

×

×

×

“अब तक बच गई, अब न बचूँगी।” उमा ने पहले से ही कहना शुरू कर दिया।

“क्यूँ ऐसी बातें मुँह से निकालती हो?” श्याम बिहारी बोला।

“देख लेना!” उमा उदास नेत्रों से श्याम बिहारी की ओर देख कर कहती।

जो उमा ने कहा वो सच ही हो कर रहा। डाक्टरनी के लिये पैसे न थे। दाई इस बार उमा को सम्भाल न पाई।

“अम्मा जी! ज़रा बहू को सम्भालना।” दाई ने आवाज़ लगाई।

श्याम बिहारी बाहर खड़ा था।

अम्मा जी जाप कर रही थीं, माला तेज़ कर दी, इशारे से कहा—“जाप ख़त्म करके जाऊँगी।”

दाई दूसरी बार चिल्लाई। अम्मा को उठता न देखकर श्याम बिहारी से न रहा गया, वह स्वयं अन्दर चला गया।

अम्मा जी ने माला रख दी।

“हाय रे! अब ये लच्छन हो गये इसके कि सौरी में मरदों को बुलाने लगी।”

अम्मा जी के तानों में अब उमा को बेधने की शक्ति न थी।

×

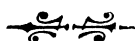
×

×

तेरहीं के दिन औरतों के बीच दहाड़ मार-मार कर अम्माजी रो रही थी—

“अरे ! मैं तो सोने की करधनी पिन्हा कर लाई थी अपनी लाड़ली बहू ! हाय रे ! हाय रे ! मेरी हीरा सी बहू ! हाय रे !”

परिस्थिति



“ओहो ! ओहो ! कहिये सालारजंग ! कब आये ?”
रामरूप ने दफ्तर के कपड़े उतारते हुए कहा ।

“बस अभी-अभी आया हूँ । सुना था, जीजी की तबियत कुछ ठीक नहीं है । सोचा देखता जाऊँ ।” चन्द्रकिशन बोला ।

“तुम तो आते ही नहीं हो । पता नहीं, कैसे भूल पड़े !
अरे ! ज़रा चाय ठीक करना ।” मुँह हाथ धोते हुए रामरूप ने कमला को आवाज़ लगाई ।

“काम में लगा रहता हूँ । जब से पिताजी ने वह ज़मीन खरीदी है, सारा समय उसी में निकल जाता है । अब ये जुताई—
अब वो बुवाई ।” चन्द्रकिशन बैठता हुआ बोला ।

कमला चाय की प्याली मेज़ पर लगाने लगी ।

“कौन-कौन रहता है गाँव पर ।” रामरूप बोला ।

“कोई नहीं, मैं ही अकेला हूँ ।”

“तब तो बड़े ठाठ होंगे ।”

“गाँव में क्या ठाठ ?”

“अरे यार ! बनो मत । गाँव में तो वह रौनक रहती है कि कभी हमें बुलाओ तो रौनक दिखायें ।”

रामरूप की आँखों में लिप्सा और अश्लीलता नग्न नृत्य कर गई । चन्द्रकिशन भी झेंप गया । उसने धीरे से कहा—

“जीजा जी ! गाँव भर में मशहूर हूँ इस बात के लिये । किसी की मजाल नहीं जो मेरी ओर उझली उठा सके ।”

कमला पर घड़ों पानी पड़ गया । सोचने लगी, पता नहीं क्यों ये ऐसी गन्दी बातें किया करते हैं । जब तक कोई ऐसी बातें हो नहीं जातीं इन्हें यही लगा करता है कि दोस्ती में अभी कसर बाकी ही रह गई । चन्दर भी तो आदमी ही है । क्या सोचता होगा चन्द्रकिशन, जीजी कैसे घर ब्याह दी ?

अच्छा ! होगा ! कमला ने जी कड़ा कर के सोचा । बोलते ही बोलते तो हैं न, कुछ करते तो नहीं ? काहे को अपना जी जलाऊँ ? उनसे तो अच्छे हैं जो इधर उधर जाते फिरते हैं ।

×

×

×

बारह बजने को आये ; अभी तक नहीं लौटे । गये हैं न दीनानाथ के साथ । एक नम्बर का आवारा है, सारा मुहल्ला जानता है इस बात को । पर इनको उसी की संगत में मज्जा आता है ।

कमला ने अपने शरीर की ओर देखा । साँचे में ढला शरीर, गौर वर्ण, आकर्षक चेहरा । कौन सी कमी है मुझ में ? मुझे क्या कोई कमी है ? इनको तो पता भी न चले । अगर

आज मैं चंचल होती न, तो ये ठीक हो जाते ।

इतने में मुन्नी रो उठी और कमला उसे गोदी में लेकर सुलाने लगी । पता नहीं, काहे को लड़की बन कर आई है । इसी तरह ये भी जला करेगी ।

इतने में कुँडी खटकी । कमला ने किवाड़ खोली । एक गज्जल गुनगुनाते-गुनगुनाते रामरूप अन्दर आकर पलंग पर बैठ गया ।

“तेरा मजबूर हो जाना
मेरा मदहोश हो जाना ।”

“बड़ी देर हो गई आज आपको । दूध पियेंगे ?” कमला बोली ।

सिर हिला कर रामरूप पलंग पर लुढ़क गये ।

कमला को शंका तो पहले ही से थी, स्पष्ट होते क्या देर लगती । वह भी जाकर लेट रही । बोलने का उसका स्वभाव ही न था । पर नींद उसे बहुत देर तक न आई ।

“ऊँह ! इस तरह कुढ़ने से क्या होगा ?” उसने सोचा “जो करते हैं बाहर ही तो करते हैं, घर में तो कुछ नहीं करते । बहुतेरे तो ऐसे होते हैं कि रिश्तेदारी में रंजिश डाल देते हैं, मेलमुलाकाती छुड़ा देते हैं । घर में दो चार डाल लेते हैं । मैं इस तरह कुढ़ने लगी तो तपेदिक ही हो जायेगी । मेरे जिन्दा रहते तो इनका यह हाल है, मेरे मरे का क्या उनको कुछ रंज होगा ?

महीने भर के बाद जो कमला ने घर में पैर रक्खा तो सारा जाले और कूड़े से भरा था । ऐसा लगता था कि इस मकान में आदमी ही नहीं रहते । ऐसे हैं ये ! झाड़ू भी ढंग से न लगवाई । एक महीने को चली गई तो घर की क्या हालत हो गई । साफ सुथरे घर में तो यह चौबीसों घण्टे मीन-मेख निकाला करते हैं—यहाँ गन्दा कर दिया वहाँ गन्दा कर दिया । और मेरे पीछे ये हाल कर रखे हैं ।

रामरूप अभी आफिस था ।

कमला झाड़ू लेकर पिल पड़ी । दीवारों पर से जाले उतारे, किवाड़ पोंछे, फिर बन्द खिड़कियों की बारी आई । एक खोली, फिर दूसरी ।

“ओहो ! आ गई तुम ?” अपने घर की खिड़की में से झाँकते हुए लीला बोली । “मैंने भी तो सोचा—आज कमला के घर झड़ाई पुताई कैसे हो गई है, कमला आ गई दीखती है । इतने दिन क्यों लगाये ?”

“तुम्हें तो पता ही है भाई की शादी थी । फिर अम्मा कहने लगीं कौन तू रोज-रोज आती है । मैंने कहा—चार साल के बाद तो आई हूँ ; सभी मायके रहा करती हैं । सो मैं भी रुक गई ।” कमला बोली ।

“ना रुकती तो अच्छा करतीं । फिर कभी मिलूंगी, तब बातें होंगी ।” और लीला जाने लगी ।

“ये चिनगारी फेंक कर कहाँ चलीं लीला ! साफ-साफ

बताओ, क्या बात है ।”

“अभी-अभी तो आई हो, बिना बात के दुःख होगा । जो दो बातें करतीं मुन्नी के बाबू जी से वो भी न कर सकोगी । घुल-घुल के शरीर तो देखो क्या हो गया है ? तुम जैसे जानती ही नहीं हो । कौन ऐसी औरत है जो अपने मरद को न पहचाने ।”

कमला जितना कम बोलती थी लीला उतना ही अधिक ।

“पहेलियाँ बुझा रही हो लीला ! बताओ भी न । या तो बात ही न छेड़ा हाती ।” कमला खीझ कर बोली ।

“और क्या बताना था । तुम्हारे पोछे यहाँ मकान में बड़े बड़े ऐश हांते थे । जब देखो तब तबला सरंगी खड़क रहा है । तुम्हारा ख्याल करके चुप लगा गये, नहीं तो मुहल्ले वाले भला यों ही छोड़ देते ?”

हर एक चीज की हद होती है; कमला का संतोष भी अपनी हद पार कर चुका था । उसके सारे शरीर में आग लग गई । उसे घर की एक-एक चीज जो उसने बरसों से संजो-संजो के रखी थी, जिनके टूट जाने का वह कई दिनों दुःख माना करती थी, उन सब से उसे ग्लानि हो उठी ।

मुन्नी की खटुलिया जो गाँव से उसका मामा दे गया था, शीतल-पाटी जिसे हरिद्वार के कुम्भ से कमला लाई थी, यह पलंग और पलंग पर पड़ा फलश का गद्दा जो उसे शादी में मिला था, पानी की रंगीन घड़ौँची जो उसने परके चार रुपये में खरीदी थी ; ये सब उसे काटने को आतीं । इस अपवित्र घर में

वह कहाँ उठे और कहाँ बैठे ।

मुन्नी भूखी हो उठी । कमला ने टोकरी में से फल निकाल कर फल दिये पर भला उससे मुन्नी को क्या भला होता ? सफर की भूखी थी । रो-रो कर उसने घर सिर पर उठाना शुरू कर दिया ।

कमला उठी, गंगा जल से उसने रसोई धोई । अन्दर से बक्स खोल कर उसने नये बर्तन निकाले और मुन्नी के लिये सब्जी छौंक कर पराँठें बनाने बैठी । पर जैसी आग चूल्हे में धधक रही थी उससे कहीं अधिक तीव्र उसके हृदय में ।

एक पराँठा तवे पर डाल कर कमला दूसरा बेलने को थी कि बाहर से सुनाई दिया-

“आज भाभी आ गई दीखे हैं । देखो कैसा बरामदा भड़ा पूछा पड़ा है ।”

दीनानाथ की आवाज सुन कर कमला के हृदय में सुलगती आग में और घी पड़ गया । रामरूप अन्दर आया और पीछे-पीछे दीनानाथ ।

“ओहो ! कैसी सुन्दर महक आ रही है । भाभी अभी तक बिना असली घी के बात नहीं करे हैं । आज तो भाभी के हाथ के पराँठे खा कर जाऊँगा ।”

कहाँ कमला दीनानाथ को देख कर पल्ले की ओट कर के चली जाया करती थी, कहाँ आज नागिन की तरह फुफकार कर बोली—

“हाँ ! हाँ ! क्यों नहीं ? ये लो पराँठे ।” और सवा सेर का जो बेलन वहीं से घुमा कर फेंका सो सीधा दीनानाथ के माथे से टकराया । दीनानाथ का सर झल्ला कर रह गया । रामरूप ने कमला की ये मूर्ति पहले कभी न देखी थी । देखता का देखता ही रह गया, कि चूल्हे में से जलती हुई एक लकड़ी और दीनानाथ के सर से टकराई । रामरूप आगे बढ़ा ।

“अरे क्या हो गया तुम को । कुछ पागल हो गई हो क्या ?”

“हाँ ! हाँ ! आओ तुम भी आओ ! तुम्हारी भी कपाल-क्रिया करूँ । तुम्हारे ऐसे पति से तो मैं……” और कमला सिल उठा कर चौके की चौखट पर खड़ी हो गई ।

रामरूप उल्टे पैरों लौट आया ।

×

×

×

घर की काया पलट गई । कमला जो शान्ति और सौम्यता की मूर्ति थी, जिसने कभी अपने मुँह से कोई चुभता हुआ शब्द न निकाला था ; अब जब बोलती भी तब नागिन की तरह फुफकार के । और रामरूप अब सदैव उसका मुँह ही निहारा करता ।

दीनानाथ फिर कभी घर में दिखाई न दिया ।

—————

कमीने कहीं के !

मेजर त्रिपाठी ने 'सभ्यता की निशानी' जो अब बोटलों में बन्द होकर आती है—गिलास में उँडेली और वह गिलास अपनी पत्नी की ओर बढ़ा दिया ।

आदमी की कल्पना से भी दूर—लम्बे और पैने नाखूनों वाली उँगलियों ने गिलास उठा लिया । अगर गिलास में जीवन होता तो अपने को उन नाखूनों के बीच पा कर सिहर उठता ।

अपने लिफ्टिक भरे ओंठों के कोने पर क्षीण मुस्कराहट लाकर लीला ने कहा—“थैंक यू” । अब मुस्कराहटें लिफ्टिक की मुस्कराहटें रह गई थीं, ओंठों की नहीं । लीला ने गिलास मुँह से लगा लिया । गिलास के भाग उसकी ओंठों की लाली से टकरा कर लौट आये ।

‘आई लैशश’ मेक अप से दबी पलकों को नीचा करके उसने अपने पति की ओर देखा । दिवस के केवल इसी प्रहर में उसकी आँखों में अपने पति के लिए कुछ स्नेह उमड़ आता था ।

मेजर अपने गिलास में सोडा लौट रहा था ।

“तुम्हारी हैल्थ के लिये” । उसने अपना गिलास लीला की ओर उठाया ।

लीला के पिचके गाल और सूखी आँखें उसकी इन्हीं शुभ-कामनाओं के आधार पर जीवित थे !

क्लब में भीड़ बढ़ने लगी । चारों ओर खून सी लाली ही लाली नजर आती थी—वही लाल-लाल होंठ और वही लाल-लाल नाखून । पर खून किस का ? उस सभ्यता का जो आज उनके गिलासों में उछल रही थी ?

मिसेज़ त्रिपाठी के पास मिसेज़ भद्रा आकर बैठ गई ।

“बेबी कैसा है जी ?”

दिन में कितनी भी बार मिलो यह प्रश्न पूछ लेना आवश्यक था ।

“ठीक है—थैंक यू—आज तो बेबी का फोटो इन्लार्ज होकर आया है । मैंने उसको कोर्नेस पर रख दिया है ।” सन्तान के प्रति अपनी कर्त्तव्यपरायणता की दीक्षा देते हुए लीला ने कहा ।
“आपका बेबी कैसा है ?”

“अभी लिवर बिल्कुल ठीक नहीं हुआ है । आया से बोल कर आई हूँ कि अभी दवा देती रहो । मेरे बेबी के तो इतने फोटो हो गये हैं—बात यह है कि मेरे हसबैंड खुद फोटो खींचते हैं—अब तो मैंने इन्लार्ज कराना भी छोड़ दिया ।”

लीला मिसेज़ भद्रा की बातों का मीठा व्यंग समझ कर जल उठी—पर जब तक स्वयं अवसर न मिले बात को लौट ही

देना चाहिये ।

“देखा आपने मिसेज चन्द्रा को ? रोज नई साड़ी पहन कर आती हैं । पता नहीं कहाँ से ?”

मिसेज भद्रा क्षण भर को क्लब और उसकी सभ्यता भूल गई । उसकी छोटी आंखें और भी छोटी हो गई, भौंहें सिमट कर एक हो गई, आँठों के कोने दब गये । दूसरों की वुराई करते समय अक्सर उनकी यह मुद्रा बन जाया करती थी ।

“आप को पता नहीं ?” उसने होंठ बिचका कर कहा, “इनकी दुहरी कमाई है दुहरी ।”

“कैसे ?” लीला ने पूछा ।

“किस दुनिया में रहती हो ?” मिसेज भद्रा बोलीं । “तुम्हें जैसे मालूम ही न हो । कौन अपने ‘हसबैंड’ की कमाई पहनती हैं ! ये सब साड़ियाँ तो उनके प्रेजेन्ट्स हैं प्रेजेन्ट्स ।”

“कैसे प्रेजेन्ट्स, बर्थ डे प्रेजेन्ट्स ?”

“अरे ! इनकी बर्थ डे तो रोज ही होती है । ये सब खरेवाल ला-लाकर दिया करता है, खरेवाल !”

“कौन सा खरेवाल, अपना खरेवाल ?”

“हाँ ! हाँ ! वो अपना खरेवाल ! क्या सोच रक्खा है तुमने उसको ? ये सब देखने ही के सीधे हैं । इनके अन्दर जाकर देखो तो ये गुल खिले मिलते हैं ।”

मिसेज चन्द्रा सीधी मिसेज त्रिपाठी ही की मेज पर चली आई ।

“नमस्ते !”

“नमस्ते जी, नमस्ते !”

“कहिये, क्या हो रहा है ?”

“हम और मिसेज भद्रा आपकी साड़ी की तारीफ़ कर रहे थे । कितना सुन्दर शेड है ! कहाँ से लो है ? लीलाराम से ?”

“यह तो मुझे मेरी बर्थ डे पर मिली थी । मुझ को भी यह साड़ी बहुत पसन्द है । लीलाराम से मैंने पूछा था, कहता था — ‘दो सौ’ से कम की न होगी ।”

“आप बड़ी ‘लकी’ हैं ।” मिसेज भद्रा बोलीं और एक व्यंग की हंसी दोनों के लिफ्टिकों पर खेल गई ।

कुछ भोड़ अधिक थी, कुछ कुर्सियाँ पास-पास । जो कोई भी कारण हो, मेजर त्रिपाठी कितनी भी कोशिश करते, बीच में निकलते समय उनका हाथ इधर-उधर लग ही जाता था । यह संयोग की बात है कि वह केवल स्त्रियों के लगे ।

“मिसेज सहाय !” एक ट्रिंक और लीजिये । त्रिपाठी बैरे को बुलाते हुए बोला ।

जब लीला का ध्यान उधर गया तब दोनों एक कोने की मेज पर बैठे गिलास की सभ्यता में डल रहे थे ।

पता नहीं क्यों, मिसेज सहाय से लीला को खास नफरत थी । उसकी नसों में प्रतिशोध भड़क उठा । फिर ये उस औरत के पास जाकर बैठ गये ! बीस बार कह चुकी हूँ, तुम्हारा उस औरत के पास बैठना मुझ को पसन्द नहीं । अब की मैं भी

दिखा दूँगी। और वह भी सामने ही एक सोफे पर बड़ी जिस को पुरुषों ने पहले से ही अपना रक्खा था।

“मैं यहाँ बैठ सकती हूँ ?”

“अवश्य। अवश्य।” पुरुषों ने जगह करते हुए कहा।

पर जगह करने पर भी बहुत कम निकली।

“वैरा ! एक बड़ा विस्की”—मेजर त्रिपाठी को अपना प्रति-शोध दिखाने के लिये लीला जोर से बोली।

मेजर ताड़ गया कि मेरा इस औरत के पास बैठना लीला को नागवार गुजरा है, वह उठ कर आया और बोला—

“डार्लिंग, ज़रा सुनना।”

लीला उठी और उसके साथ हो ली। दोनों गैलरी में चले गए। एकान्त में दोनों ने अपनी सभ्यता का आवरण उतार फेंका।

“यह क्या बत्तमीज़ी है ?” मेजर गुर्गया।

“तुम अगर उस औरत के पास बैठ सकते हो तो मैं भी मर्दों में बैठ सकती हूँ।” लीला ने अपनी आँखों से अंगारे उगलते हुए कहा। “अपनी बत्तमीज़ी देखो। ख़बरदार ! जो मुझ से कुछ कहा तो।”

“क्लब में ये हरकतें करते हुए शरम नहीं आती। अच्छा लो, मैं हट जाता हूँ।”

“तुम हट जाओगे तो मैं भी हट जाऊँगी।”

जब दोनों गैलरी के बाहर निकले तो मुस्करा रहे थे, मानों

प्रेम-वार्ता करके आये हों ।

पर नशे में की गई इन संधि की शर्तों का कब तक ध्यान रहता ! थोड़ी देर में मेजर उसी मेज़ पर और उसी औरत के पास जा पहुँचा और लीला फिर उसी सोफे पर से चिल्लाई—

“बैरा ! एक बड़ा विस्की ।”

मेजर फिर उठ कर आया और अपने गिलास का अमृत लीला के गिलास में लौटने लगा । लीला ने नफरत से गिलास उठा कर क्लब के दर्पण से चमकते हुए फर्श पर दे मारा ।

खन् से होकर गिलास चकनाचूर हो गया । सब उसकी ओर देखने लगे ।

सभ्य समाज में यह असभ्य व्यवहार !

मिसेज़ भद्रा मिसेज़ चन्द्रा के कानों के पास अपने कान ले जा कर बोलीं—“पता नहीं, इन्हें क्लब का मैम्बर किसने बनने दिया । ऐसे लोगों को तो ‘ब्लैक बौल’ कर देना चाहिए ।”

लीला खरेवाल के साथ उठ कर चल दी । मेजर का माथा ठनका । उसने भी जीप ‘स्टार्ट’ करी ।

घर जाकर देखा, लीला अपने बेडरूम में लेटी थी; वह बेडरूम जिसका कोना-कोना दाम्पत्य प्रेम की ओर संकेत करता था ।

मेजर फिर गुराया—“तुम खरेवाल के साथ कैसे आई ?”

“तुम मिसेज़ सहाय के पास कैसे बैठे ?” लीला ने अपने लम्बे लम्बे नाखूनों वाले शेरनी के से पंजे मीचते हुए कहा ।

“बदचलन कहीं की !”

“बदचलन तुम ।” और पास रखी पानी की बोतल और गिलास खींच कर लीला ने मेजर के सिर का निशाना लगा दिया ।

मेजर का सिर भन्ना गया । उसने भी कुछ उठाना चाहा । पर आज उसके और लीला के नशे में अन्तर था । वह जो चीजें पहले आसानी से उठा लेता था वे भी न उठा पा रहा था और लीला जो चीजें कभी न उठा पाती थी वे भी उठा उठा कर फेंक रही थी ।

थोड़ी देर में घंटी बजी । बैरा क्वार्टर से भागा भागा आया । साहब ने शायद शराब ज्यादा पी ली है । बेडरूम फिर सुव्यवस्थित कर दिया गया, उतना ही जितना पहले था ।

रात ही को डाक्टर आया । ड्रेसिङ्ग हुई ।

“क्या बताऊँ डाक्टर साहेब ! बाथ रूम में ऐसा पैर फिसला, शोब करने का गिलास हाथ में था सिर से लगा, और हाथ वार्शिंग बेसिन पर इस जोर का पड़ा है कि... ..” मेजर साहब सफाई दे रहे थे ।

×

×

×

हाथ स्लिंग में डाले और सिर पर स्टिकिंग प्लास्टर का एक बड़ा पैच लगाए मेजर साहेब बरामदे से निकले ।

“यह शोर कैसा मच रहा है ?”

“हजूर, रात धोबी ने ताड़ी पी ली थी । उसकी औरत भी तो पीती है, हजूर । दोनों में पता नहीं क्या हुआ कि दोनों में लड़ाई

शुरू हो गई । धोबिन ने धोबी का सिर फोड़ डाला । धोबी कुछ ज्यादा पी गया था ।”

मेजर साहेब बड़बड़ाने लगे—“क्या शोर मचा रक्खा है ! घर में रहना मुश्किल कर दिया है । नीचों की जाति ही ऐसी है । कमीने कहीं के !”
